महाकवि ख़ुसरो

सफ़दर आह



उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

महाकवि खुसरो

हिन्दी समिति ग्रन्थमाला : २४५

महाकवि खुसरो

(अमीर खुसरो बहैसियत हिन्दी शायर का अनुवाद)

लेखक

सफदर 'आह'

अनुवादक

अब्दुल सत्तार

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

(हिन्दी समिति प्रभाग)

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन

६, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ-२२६००१

प्रकाशक :

डॉ. सुधाकर अदीब

निदेशक

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

लखनऊ

प्रथम संस्करण : १६७६

द्वितीय संस्करण : १६६६

तृतीय संस्करण : २०१४

मूल्य : ₹ १००=०० (सौ रुपये मात्र)

प्रतियाँ : ५००

ISBN : 978-93-82175-37-7

मुद्रक

रोहिताश्व प्रिण्टर्स

२६८, ऐशबाग रोड, लखनऊ

फोन : २६६२६७३

प्रकाशकीय

आधुनिक हिन्दी साहित्य का कोई इतिहास अमीर खुसरो के योगदान को याद किये बिना पूरा नहीं होता। खड़ी बोली के तो वह आदि कवि माने जाते हैं। उनका अधिकतर समय १३वीं सदी के उत्तरार्द्ध में राज दरबारों में बीता था और उस समय की सरकारी भाषा फारसी थी। उर्दू का भी उसी समय विकास हो रहा था। खड़ी बोली हिन्दी भी आम आदमी के बीच लगातार विकसित हो रही थी। ऐसे में अमीर खुसरो ने जिस तरह से दरबारी व्यस्तताओं के बीच साहित्य रचना का क्रम बनाये रखा और आधुनिक खड़ी बोली में हिन्दी काव्य के वे प्रणेता थे। खड़ी बोली हिन्दी को उसका माध्यम बनाया, उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, कम होगी।

हिन्दी साहित्य का कोई भी गम्भीर अध्येता अमीर खुसरो के समय और उनके योगदान को जाने बिना नहीं रह सकता। इसी क्रम में कुछ दशक पहले जब अमीर खुसरो की सातवीं जन्मशती मनायी गयी थी, तो उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने उनके सम्बन्ध में उर्दू में लिखी गयी पुस्तक 'अमीर खुसरो' बहैसियत हिन्दी शायर का अनुवाद 'अमीर खुसरो' शीर्षक से कराया था। डॉ. सफदर आह की इस महत्वपूर्ण पुस्तक का अनुवाद अब्दुल सत्तार ने किया था। स्पष्ट है कि अमीर खुसरो के योगदान पर अन्य भाषाभाषी विद्वानों की भी निगाह थी, अपितु खड़ी बोली हिन्दी के प्रति उनके योगदान के महत्व से भी वे परिचित थे।

'महाकवि खुसरो' पुस्तक ८८ पृष्ठों में सीमित है और तीन अध्यायों में विभक्त है। 'अमीर खुसरो का जीवन परिचय', 'अमीर खुसरो की हिन्दी कविता' और 'खालिक बारी'। इनमें जहाँ तक 'खालिक बारी' का सम्बन्ध है यह उनकी उस पुस्तक का शीर्षक है, जिसमें खड़ी बोली हिन्दी के प्रति उनके योगदान को दुनिया ने पहचाना। अमीर खुसरो की फारसी कविता का जो महत्व है, उससे किसी तरह कम महत्त्व उनकी हिन्दी कविता का नहीं है। उनकी हिन्दी कविता हमारी राष्ट्रीय कविता एवम् साहित्य का प्रथम स्वरूप है। उर्दू, हिन्दी, हिन्दुस्तानी अथवा खड़ी बोली का प्रथम रूप हमें अमीर खुसरो की ही हिन्दी कविता में दिखायी देता है। वह एक ओर सक्रिय दरबारी थे, तो दूसरे ओर सहृदय कवि भी। उनके चिंतन में सूफीवाद को अत्यन्त प्रमुखता मिली है। यह स्वाभाविक ही था क्योंकि ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया के वे अत्यन्त प्रिय शिष्य थे। ख्वाजा साहब के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा थी यहाँ तक कि

उनके निधन के बाद खुसरो ने घर-बार छोड़ दिया था। कहते हैं कुछ समय के भीतर उनका भी निधन हो गया था।

लौकिकता-अलौकिकता के बीच अमीर खुसरो ने दुर्लभ सामंजस्य न केवल जीवन में जिया था, कविता और साहित्य में भी जिया। उनकी लोकप्रिय पहेलियाँ या ग़ज़लें हों सभी इसी रंग में रँगी हैं। आशा है, अमीर खुसरो के अतुलनीय साहित्यिक अवदान पर केन्द्रित पुस्तक 'महाकवि खुसरो' का यह तीसरा संस्करण भी सुधीजनों के बीच पूर्वतः पर्याप्त लोकप्रिय होगा।

डॉ. सुधाकर अदीब

निदेशक

निवेदन

भारत की गंगा-जमुनी संस्कृति सिर्फ चर्चाओं तक समिति नहीं है, वह हमारी साँसों में घुली-मिली है। यह एक सच्चाई है कि संस्कृति के किसी भी क्षेत्र के विकास में यहाँ के विभिन्न धर्मों, वर्गों, जातियों और क्षेत्रों के लोगों ने हमेशा न केवल मिलजुल कर सहयोग दिया है, अपितु उनका योगदान अनुपम भी है। जहाँ तक हिन्दी साहित्य का सम्बन्ध है, प्रारम्भ से ही उत्तर भारत के विभिन्न धर्मों-जातियों के लोगों ने मिलजुल कर इसके प्रचार-प्रसार में कुछ उठा नहीं रखा। विशेषकर भक्तिकाल में तो यह व्यापकता अत्यन्त मुखर है। यह गौरवपूर्ण परम्परा आज भी अबाध गति से फलफूल रही है।

ऐसे में जिन मुस्लिम कवियों के यशस्वी योगदान से आज हमारी हिन्दी भाषा धन्य है, उनमें अमीर खुसरो का नाम अत्यन्त आदर से लिया जाता है कि आज जिस खड़ी बोली हिन्दी में इसका सारा साहित्य सिमटा हुआ है, उसका प्रारम्भ कभी खुसरो ने ही किया था और उसी खड़ी बोली की दो लोकप्रिय धाराएँ हिन्दी और उर्दू के रूप में विकसित हुईं। खुसरो ने पहेलियों, मुकरियों और अन्य शैलियों में अनेक रचनाएँ कीं। उनकी रचनाओं में जीवन के विविध पहलुओं के साथ-साथ अध्यात्मक के प्रति भी उनका गहरा जुड़ाव देखने को मिलता है। विशेषकर जिस सूफीवाद की उत्तर भारत में भरीपूरी परम्परा है, उसे लोकप्रिय बनाने में खुसरो का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उनकी सुप्रसिद्ध पंक्तियाँ हैं – 'गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस, चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुं देस।'

कहा जाता है कि उनका जन्म पटियाली (एटा), उत्तर प्रदेश में सन् १२५३ में हुआ था और उनकी लगभग ४५ कृतियाँ इस समय उपलब्ध हैं। लगभग ६५ वर्ष की आयु में १३२३ में उनका निधन दिल्ली में हुआ था। उनकी पुस्तकों में से अनेक खड़ी बोली हिन्दी के प्रारम्भिक दौर पर प्रकाश डालती हैं। उनके इस योगदान का महत्व तब और बढ़ जाता है, जब हम यह देखते हैं कि उस समय सरकारी और साहित्यिक भाषा के रूप में फारसी हर ओर प्रतिष्ठित थी। इसी परिवेश में जन साधारण के बीच 'खड़ी बोली हिन्दी या देहलवी हिन्दी' भी अपनी जगह बना रही थी। यह और बात है कि खड़ी बोली हिन्दी प्रारम्भिक दौर में सरकारी भाषा के कई तरह के दबावों से भी गुजरी, जिसके कारण हिन्दी की ब्रज, अवधी व अन्य बोलियों का विकास हुआ। कुछ शताब्दियों बाद मथुरा, आगरा, राजस्थान आदि क्षेत्रों में इन

बोलियों में साहित्य सृजन होने लगा। कालान्तर में सूरदास सहित अष्टछाप के कई अन्य कवियों में तुलसीदास, रहीम और जायसी जैसे महान साहित्यिक विभूतियों से हिन्दी साहित्य संसार को समृद्ध होते देखते हैं।

इस सन्दर्भ में आधुनिक हिन्दी के विकास में अमीर खुसरो का योगदान इस सीमा तक स्वतः स्पष्ट है कि कुछ विद्वान उन्हें खड़ी बोली हिन्दी और उर्दू का जनक मानते हैं। यह योगदान इतना महत्वपूर्ण रहा था कि इनके उर्दू-लेखकों ने भी उनके इस महत्व को रेखांकित किया। सुप्रसिद्ध उर्दू-विद्वान सफदर आह की चर्चित पुस्तक 'अमीर खुसरो' बहैसियत हिन्दी सेवा की सम्पूर्ण साहित्यिक सेवा को 'गागर में सागर' की तरह संजोया गया है, जिसका अनुवाद उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के लिए १६७६ में उर्दू-हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान अब्दुल सत्तार ने किया था। बीस वर्षों बाद १६६६ इस पुस्तक का दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ था और अब इसका तीसरा संस्करण आपके समक्ष है। स्पष्ट है कि हिन्दी संसार आज भी न केवल खुसरो के योगदान के समक्ष नतमस्तक है, अपितु उनके सन्दर्भ में अधिकाधिक जानने-समझने के लिए लालायित है। पुस्तक 'महाकवि खुसरो' का यह तीसरा संस्करण इस निरंतरता को बनाये रखे, यही कामना है।

उदय प्रताप सिंह
कार्यकारी अध्यक्ष

प्रथम संस्करण की प्रकाशकीय

महाकवि अमीर खुसरो को हिन्दी की खड़ी बोली का प्रथम सशक्त रचनाकार होने का गौरव प्राप्त है। उन्होंने विविध विधाओं में रचनाएँ प्रस्तुत कीं और उनकी ये रचनाएँ शिक्षित और प्रतिष्ठित लोगों में ही नहीं अपितु सर्वसाधारण में भी समान रूप से अत्यधिक लोकप्रिय सिद्ध हुईं। आज सात सौ वर्ष बाद भी अमीर खुसरो की कविताएँ, गजल, पहेलियाँ, लोकगीत आदि पूर्ववत् रसानुभूति का संचार करने में सक्षम हैं। यही कवि की शाश्वत लोकप्रियता और प्रसिद्धि का ज्वलंत प्रमाण है।

सुविख्यात उर्दू लेखक और आलोचक डॉ. सफदर 'आह' ने अमीर खुसरो की हिन्दी रचनाओं का एक विशद विवेचन अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'अमीर खुसरो बहैसियत हिन्दी शायर' में प्रस्तुत किया है। यद्यपि पुस्तक देखने में छोटी है तथापि यह 'गागर में सागर' की कहावत को चरितार्थ करती है। क्योंकि इस पुस्तक में अमीर खुसरो की रचनाओं और रचनाकार का समग्ररूपेण मूल्यांकन समाविष्ट करने का स्तुत्य प्रयास किया गया है।

खुसरो सप्तशती समारोह के समापन के उपलक्ष्य में डॉ. सफदर 'आह' की इसी पुस्तक का यह हिन्दी रूपान्तर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है। रूपान्तर प्रस्तुत किया है श्री अब्दुल सत्तार ने और पुस्तक सम्पादन कार्य को हिन्दी समिति के प्रधान सम्पादक श्री रमाकान्त श्रीवास्तव ने सम्पन्न किया है।

आशा है, जिज्ञासु हिन्दी पाठकों को भी इस पुस्तक के माध्यम से महाकवि अमीर खुसरो के जीवन और उनकी हिन्दी रचनाओं का सम्यक् दिग्दर्शन हो सकेगा और यह उनके बीच लोकप्रिय सिद्ध होगी।

कार्तिक पूर्णिमा १६७६

शिवशंकर मिश्र
संयुक्त सचिव
हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश शासन

विषय सूची

अमीर खुसरो का जीवन-परिचय

अमीर खुसरो के पिता अमीर सैफुद्दीन तुर्कों के लाचीन कबीले के सरदार थे। चंगेजी लड़ाइयों के जमाने में यह अपने वतन किश मावराउन्नह्र से हिन्दुस्तान आये और उत्तर प्रदेश में गंगा के किनारे एक प्राचीन कस्बा पटियाली जिला एटा में आबाद हो गये। पटियाली दिल्ली से अधिक दूर नहीं है। उस समय शम्सुद्दीन अल्तुमिश दिल्ली का बादशाह था। अमीर सैफुद्दीन को उसने एक सम्मानित फौजी पद दिया और यह अपने कार्यों के कारण उस शिखर पर पहुँचे कि उस समय के बादशाह और प्रशासन के मुख्य सदस्य 'एमादुलबुल्क' की लड़की से उनका विवाह हो गया।

६५१ हिजरी सन् १२५३ ई. में अमीर खुसरो पटियाली में पैदा हुए। उनके दो भाई और थे जिनके नाम इतिहास में केवल इसलिए सुरक्षित हैं कि वे अमीर खुसरो के भाई थे। अमीर खुसरो का विवेक बचपन ही से मालूम होने लगा था। अमीर सैफुउद्दीन ने उनकी शिक्षा-दीक्षा की ओर पूरा ध्यान दिया। वह अपने होनहार पुत्र को दिल्ली लाये और अच्छे शिक्षकों के हवाले कर दिया। साथ ही प्रचुरता के लिये ख्वाजा निजामुद्दीन अवलिया रहमतुल्लाह अलैह के चरणों पर गिराकर उनका शिष्य भी बना दिया। अमीर खुसरो ने वयस्क और समझदार होकर नियमतः उस श्रद्धा को नया रूप दिया।

डॉक्टर वहीद मिर्जा इस श्रद्धा का वर्ष साधारण परम्पराओं के विरुद्ध ६७१ हिजरी सन् १२७३ ई. बताते हैं जबकि अमीर खुसरो की आयु बीस वर्ष की रही होगी।

इस नवीन श्रद्धा का अभिप्राय यह नहीं था कि बीस-इक्कीस वर्ष की आयु में अमीर खुसरो मुल्ला बन गये। वह एक भावुक कवि तथा कलाकार पहले थे और कुछ बाद में। स्वयं उन्हीं के लेखों में अपने जीवन के कुछ मनोरंजक पहलुओं की तरफ संकेत विद्यमान हैं जिनकी खोज करना उनकी जीवनी लेखक का कार्य होगा। मेरे लिए यह विषय नहीं है।

अपने गुरु के आशीर्वाद से वैसे तो वह आरम्भ से अन्त तक लाभ उठाते रहे और सफल होते रहे परन्तु मेरा विचार है कि उनका नियमित धार्मिक जीवन आयु के पचास वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद प्रारम्भ हुआ। उनके शिष्य होने का वर्ष ७०१ हिजरी अथवा ७१३ हिजरी सन् १३१५ ई. भी बताया जाता है। सम्भव है कि गुरु

के समक्ष कोई विशेष रीति-रिवाज पूरा करने के बाद उस जमाने से उनका धार्मिक जीवन प्रारम्भ हुआ हो। संसार से अलगाव का रंग उनमें उसी समय से स्पष्ट हुआ है।

अमीर खुसरो तथा हसन की जो घटनाएँ उल्लिखित हैं, मैं उन्हें बिलकुल झूठ और निराधार समझता हूँ। आश्चर्य है कि मौलाना शिब्ली जैसे साहित्यकार को ये घटनाएँ लिखते समय उनकी दुर्गन्ध महसूस नहीं हुई। कुछ साहित्यिक वाक्यों अथवा अच्छी काव्य-पंक्तियों को घटनाओं में खपा देने से उन घटनाओं की वास्तविकता परिवर्तित नहीं हो जाती। 'हसन' अमीर खुसरो के बहुत प्रिय एवम् घनिष्ठ मित्र, उच्चकोटि के कवि तथा बड़े भाई थे। इस अश्लील कहानी का मूल लेख न जाने कहाँ है।

अमीर खुसरो अभी आठ वर्ष के थे कि उनके पिता किसी युद्ध में मारे गये। अमीर खुसरो की माता को गम्भीर परिस्थितियों से बाध्य होकर अपने पिता 'एमादुलमुल्क' के यहाँ आना पड़ा। 'एमादुलमुल्क' का घर भारतीय सभ्यता का केन्द्र था। उसी वातावरण में पढ़-लिखकर अमीर खुसरो बड़े हुए। हिन्दी अमीर खुसरो की मातृभाषा थी। इसके अतिरिक्त वह संस्कृत, फारसी, अरबी, तुर्की तथा हिन्दुस्तान की अन्य प्रान्तीय भाषाएँ भी जानते थे और साथ ही साथ बहुत सी कलाओं में दक्ष भी थे। सत्रह-अठारह वर्ष की आयु में वह कवि के रूप में दिल्ली के साहित्यिक क्षेत्रों पर छा गये थे। उनका मधुरगान उनकी सुन्दर कविता का आभूषण था। जिस सभा में भी वह अपनी कविता पढ़ते थे, वहाँ सन्नाटा छा जाता था।

अमीर खुसरो 'एमादुलमुल्क' जैसे सज्जन एवं रईस के प्रिय नाती थे। यह बात स्पष्ट है कि नाना के जीवन-काल में समय का दुःख उनके पास न आ सका। परन्तु ६७१ हिजरी सन् १२७२ ई. में 'एमादुल मुल्क' ११३ वर्ष की आयु में स्वर्गवासी हुए जिसके उपरान्त अमीर खुसरो के लिए आय की चिन्ता आवश्यक हो गयी। उनके जीवन का सिद्धान्त बहुत प्रबल था तथा उस सिद्धान्त को बनाये रखने के लिए उन्हें उचित आय की आवश्यकता थी, जिसकी आशा केवल तभी सम्भव हो सकती थी जब वह बादशाह अथवा किसी अन्य धनवान की नौकरी करें।

उस समय दिल्ली के सिंहासन पर कठोर एवं निर्दयी बादशाह बलबन आसीन था। वह भला अमीर खुसरो का आदर-सत्कार क्या करता। परन्तु बादशाह का भतीजा कत्लू खाँ उर्फ मलिक छज्जू अमीर खुसरो का अत्यधिक प्रशंसक था। अमीर

खुसरो की प्रथम नौकरी यहीं से प्रारम्भ हुई। इस नौकरी का सम्बन्ध दो वर्ष तक चलता रहा। बाद में मालिक छज्जू तथा अमीर खुसरो में कुछ भ्रम पैदा हो गया और अमीर खुसरो ने नौकरी त्याग दी।

उनकी दूसरी नौकरी 'सामाने' के उत्तराधिकारी तथा बादशाह बलबन के छोटे लड़के बुगरा खाँ के दरबार में हुई जो तीन वर्ष तक चलती रही। एक अभियान के सम्बन्ध में अमीर खुसरो, बुगरा खाँ के साथ पूर्वी हिन्दुस्तान की यात्रा पर भी गये।

तीसरी नौकरी बादशाह बलबल के बड़े लड़के सुलतान मुहम्मद हाकिम मुलतान के दरबार में हुई। यह नौकरी पाँच वर्ष तक चलती रही। शाही महल हो अथवा युद्ध-स्थल, बादशाह अमीर खुसरो को अपने साथ ही रखता था। इसलिए ६८३ हिजरी सन् १२८४ ई. में जब वह मुगलों से लड़ता हुआ मारा गया तो अमीर खुसरो भी उसके साथ थे। मुगल दूसरे कैदियों के साथ अमीर खुसरो को भी गिरफ्तार कर 'कुशानेकुशा' ले चले। किन्तु सौभाग्य से उन्हें भागने का अवसर मिल गया और वह पहाड़ों और जंगलों के रास्ते की कठिनाइयों को सहन करते हुए दिल्ली वापस आ गये।

चौथी नौकरी अमीर खुसरो ने अवध के उत्तराधिकारी खान अमीर अली के दरबार में की और दो वर्ष तक खान के साथ अयोध्या में रहे। परन्तु दूरी के कारण माता की आज्ञा से इस नौकरी को त्यागना पड़ा।

पाँचवीं नौकरी से अमीर खुसरो दिल्ली के दरबार में आ गये। उस समय बुगरा खाँ का नवजवान लड़का 'कैकुबाद' सिंहासन पर था। उसने अमीर खुसरो को 'मुल्कुश्शोअरा' के पद से अलंकृत कर बड़े आदर-सत्कार के साथ रखा। अभी उस नौकरी का केवल एक वर्ष हुआ था कि बादशाह का देहान्त हो गया।

छठवीं नौकरी बादशाह जलालुद्दीन के दरबार में हुई। उस बादशाह ने अमीर खुसरो को 'मुल्कुश्शोअरा' के साथ 'अमीर' के पद से भी विभूषित किया और साथ ही 'मुसहफदारी' के पद से भी सुशोभित किया। यह नौकरी लगभग छः वर्ष तक चलती रही।

सातवीं नौकरी बादशाह अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में की थी जो बीस वर्ष ६९५ हिजरी से ७१५ हिजरी तक (सन् १२९५ ई. से १३१५ ई. तक) रही। बादशाह के साथ अभियानों पर जाकर अमीर खुसरो ने दक्षिणी भारत एवं अन्य दर्शनीय स्थल देखे।

आठवीं नौकरी बादशाह कुतुबुद्दीन के दरबार में हुई और यह छः वर्ष तक चलती रही।

नवीं नौकरी मलिक तुगलक के दरबार में की और दो वर्ष तक रही।

दसवीं नौकरी ७२३ हिजरी सन् १३२३ ई. में मुहम्मद तुगलक के दरबार में हुई। इसी शासन-काल में ६५ वर्ष की आयु में ख्वाजा निजामुद्दीन अवलिया रहमतुल्लाह अलैह का देहावसान हुआ। अमीर खुसरो उस समय दिल्ली से बाहर थे। जब उन्हें यह शोक समाचार मिला तो वह दीवानों की भाँति दिल्ली पहुँचे।

उन्होंने अपना सब कुछ दीवानगी में लुटा दिया और संसार को त्याग कर गुरु की समाधि पर झाड़ू देने लगे और इस प्रकार अपनी असीम श्रद्धा व्यक्त की। उन्होंने अपने गुरु की समाधि को देखकर निम्नलिखित दोहे की रचना की थी -

गोरी सोई सेज पर मुख पर डारे केस,
चल 'खुसरो' घर आपने रैन भयी चहुँ देस।

आज भी ख्वाजा निजामुद्दीन अवलिया रहमतुल्लाह अलैह के उर्स का उद्घाटन इसी हिन्दी दोहे से होता है।

गुरु के प्राणान्त के बाद अमीर खुसरो कुछ ही महीने जीवित रहे। और १८ शव्वाल ७२५ हिजरी (सन् १३२५ ई.) को स्वयं भी इस संसार से चल बसे। उनकी समाधि ध्वाजा साहब के पैताने बनायी गयी जो आज तक हर कौम का दर्शनास्थल है। अमीर खुसरो बड़े सौभाग्यशाली थे और अपनी प्रत्येक नौकरी में जो आदर-सत्कार, भेंट-उपहार आदि पाया, वह शायद ही किसी अन्य कवि को मिला हो।

अमीर खुसरो के जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव ख्वाजा निजामुद्दीन अवलिया रहमतुल्लाह अलैह का पड़ा था। एक बहुत बड़े वयोवृद्ध अथवा बुद्धिमान सलाहकार की दृष्टि से वह अमीर खुसरो के जीवन के प्रत्येक भाग में छाये हुए थे। अमीर खुसरो के आश्चर्यजक जीवन के सम्बन्ध में बीसों प्रश्न ऐसे हैं जिनका उत्तर उन्हें ख्वाजा साहब से पृथक कर देने के बाद बड़ी कठिनाई से मिलेगा।

अमीर खुसरो प्रातःकाल से सन्ध्या तक दरबारदारी करते थे। रात्रि के समय देर तक अपने गुरु की सेवा में उपस्थित रहते थे। मित्रों का आदर-सत्कार तथा अन्य मनोविनोदों में बढ़-चढ़कर भाग लेते थे। अपने निजी काम-काज करते थे तथा अपनी पत्नी तथा बच्चों को भी कुछ समय देते थे। इसके पश्चात् उन्हें इतना समय कैसे मिला कि अपने स्वतंत्र जीवन के साथ उन्होंने लाखों काव्य-पंक्तियाँ रच डालीं।

अथवा

साधारण गायक कलाकार बनने के लिए जीवन पर परिश्रम करना पड़ता है। संगीत के सर्वोच्च स्थान तक पहुँचने के लिए उन्हें परिश्रम करने का समय कैसे मिला तथा किस गुरु की संरक्षता में उन्होंने परिश्रम किया? ऐसे ही बीसों प्रश्न हैं जिनका उत्तर इतिहास के पृष्ठ नहीं दे सकते।

यदि आस्था रखने वाला कोई यह कहे तो गलत न होगा कि ख्वाजा निजामुद्दीन अवलिया रहमतुल्लाह अलैह को इस संसार में जो कुछ करना था, उसमें सबसे महत्वपूर्ण कार्य अमीर खुसरो का था।

ख्वाजा साहब तो स्वयं ही कहते थे कि प्रलय के दिन जिस समय परमेश्वर मुझसे पूछेगा कि संसार में से क्या लाया तो मैं अमीर खुसरो को प्रस्तुत कर दूँगा। यदि चमत्कार भी कोई ऐसी वस्तु है तो ख्वाजा साहब का सबसे बड़ा चमत्कार खुसरो हैं।

अमीर खुसरो की कृतियों की संख्या बढ़ा-चढ़ा कर १९९ तक बतायी जाती हैं। परन्तु १९१५ ई. सैयद हसन बेलगेरामी के अनुसार नवाब इसहाक ने अमीर खुसरो की कृतियों का जो शोध अभियान चलाया था, उसमें उनकी ४५ कृतियों का उल्लेख है, जिनमें से पद्य और गद्य की कुल २८ पुस्तकें प्राप्त हो सकीं। उन्हीं ४५ पुस्तकों में से एक अप्राप्त पुस्तक 'हालात-ए-कन्हैया' है। यह नहीं मालूम कि यह पुस्तक फारसी में थी अथवा हिन्दी में। एक और अप्राप्त पुस्तक 'तरान-ए-हिन्दी' है, जिनको हिन्दी में होने का सन्देह हो सकता हैं, जो सामान्यतया हिन्दी में नहीं होना चाहिए। सत्यता जो भी हो, यह तो केवल अनुमान है। वास्तविकता क्या है, किसी को ज्ञात नहीं है।

अमीर खुसरो की यह अत्यन्त संक्षिप्त कहानी केवल उनके समय का परिदृश्य बताने के लिए प्रस्तुत की गयी है।

●

अमीर खुसरो की हिन्दी कविता

अमीर खुसरो की फारसी कविता का जो महत्व है, उससे किसी तरह कम महत्त्व उनकी हिन्दी कविता का नहीं है। उनकी हिन्दी कविता हमारी राष्ट्रीय कविता एवम् साहित्य का प्रथम स्वरूप है। उर्दू, हिन्दी, हिन्दुस्तानी अथवा खड़ी बोली का प्रथम रूप हमें अमीर खुसरो की ही हिन्दी कविता में दृष्टिगोचर होता है।

संभवतः अमीर खुसरो से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व एक कवि मसऊद साद सलमान लाहौरी (४३८ हिजरी से ५१५ हिजरी तक) हुए हैं। पहले तो वह शाही दरबार से सम्बन्धित रहे। उसके बाद चालीस वर्ष की आयु में किसी राजनैतिक अपराध में गिरफ्तार हुए और १६ वर्षों तक जेल में रहे। जेल होने से पूर्व तथा पश्चात् और जेल के मध्य उन्होंने बहुत कुछ लिखा है।

अमीर खुसरो ने अपनी रचना 'गुर्रतुलकमाल' की भूमिका में मसऊद साद सलमान का उल्लेख बड़े आदर से किया है और बताया है कि उनकी तीन रचनाएँ हैं - एक अरबी में, दूसरी फारसी में तथा तीसरी हिन्दी में। मसऊद साद सलमान की फारसी रचना अब भी शेष है और लगभग आठ सौ पृष्ठों पर आधारित रशीद यासमी ने तेहरान से प्रकाशित किया है। परन्तु उनकी अरबी रचना संभवतः अप्राप्त है तथा हिन्दी रचना का केवल उल्लेख ही अवशेष है।

मसऊद साद सलमान की फारसी कविता से यह तो ज्ञात होता ही है कि उन्हें हिन्दुस्तानी रीति-रिवाज से लगाव था और हिन्दी में शायद उन्होंने बहुत कुछ लिखा होगा। अमीर खुसरो की मृत्यु के उपरान्त उनका हिन्दी कवि होना मानने योग्य बात है।

परन्तु उनकी हिन्दी कविता का नमूना आज हमारे पास विद्यमान नहीं है, जिससे हम उनकी भाषा-शैली के सम्बन्ध में कोई विचार व्यक्त नहीं कर सकें। हमारे साहित्य का प्रारम्भ अमीर खुसरो की ही कविता से होता है।

अमीर खुसरो की हिन्दी कविताएँ : अमीर खुसरो की आश्चर्यजनक कविताओं की संख्या जानने के लिए उनकी प्रचुरता तथा अविलम्बोत्तर देने की योग्यता को मस्तिष्क में रखने की आवश्यकता है। अमीर खुसरो अपनी चौथी रचना 'बकिया-नकिया' की भूमिका में अपनी तीव्रता के लिए कहते हैं कि मैं काव्य-पंक्ति इतनी देर में कहता हूँ कि जितनी देर में शब्द कविता की जबान से पूरा किया जाय।

धनवानों की महफिलों के लिए वह कहते हैं कि वहाँ मैं अधिकतर कलम का प्रयोग त्याग देता हूँ तथा अविलम्ब तैयार काव्य-पंक्तियों पर संतोष करता हूँ।

यह उल्लेख किसी बकवास करने वाले का नहीं। अमीर खुसरो जैसे बुद्धिमान और ज्ञानी का है, जो कविता के अतिरिक्त सभ्यता तथा शिष्टाचार के क्षेत्रों में भी एक उच्च स्थान रखता है। हमें अमीर खुसरो ही के उल्लेख के प्रकाश में उनकी कविताओं की संख्या का अनुमान करना होगा।

उनके उल्लेखकर्ताओं ने स्वयम् अमीर खुसरो के कथनानुसार उनकी फारसी कविताओं की संख्या तीन लाख से अधिक तथा चार लाख से कम बतायी है। 'तजकेर-ए-अरफात' में उल्लिखित है कि अमीर खुसरो की हिन्दी कविताएँ उतनी ही थीं, जितनी उनकी फारसी कविताएँ थीं।

इसका अभिप्राय यह हुआ कि उनकी तीन-चार लाख काव्य पंक्तियाँ हिन्दी में भी होंगी। मौलाना शिब्ली 'बैत' का प्राचीन अर्थ 'मिस्राअ' बताते हैं तथा अमीर खुसरो की कविताओं की संख्या आधी कर देना चाहते हैं। अमीर खुसरो की कविता यदि आधी भी कर दी जाय तो भी इतनी अधिक है कि शायद ही किसी कवि की कविताओं की संख्या अमीर खुसरो के समान हो सके। परन्तु सत्यता यह है कि 'मौलाना शिब्ली' का विचार उचित नहीं है। अमीर खुसरो के समय में 'बैत' का अर्थ 'मत्लाअ नुमा शेर' था। स्वयम् अमीर खुसरो ने भी 'बैत' शब्द को इन्हीं अर्थों में अपनी कविताओं में प्रयोग किया है।

(मत्लाअनुमा शेर - ग़ज़ल के प्रथम दो चरण जिसके दोनों चरण सानुप्रास होते हैं।)

जैसे 'एजाज-ए-खुसरवी' की प्रथम पुस्तक में 'निस्बते माजराय आब' के शीर्षक के सम्बन्ध में उन्होंने निम्नलिखित 'मत्लाअ' को 'बैत' कहा है -

अब्र मी बारद व मन मी शवम् अज यार जुदा।
चूँ कुनम दिल ब चुनीं वक्त ज दिलदार जुदा।।

उसी 'एजाज-ए-खुसरवी' की दूसरी पुस्तक में भूमिका समाप्ति पर वह इस 'मत्लाअ' को 'बैत' कहते हैं :-

ईं किस्म माय-ए-हमा दर गर्ब व शर्क बीं।
वीं बैत दरमियाने दो खत बह-ए-फर्क बीं।।

अमीर खुसरो अपनी रचनाओं में 'मिस्रेअ' को केवल 'मिस्राअ' लिखते हैं। 'मिस्राअ' को उन्होंने 'बैत' किसी स्थान पर नहीं कहा है। मौलाना शिब्ली के भ्रम के उपरान्त यदि उन्हीं के अनुमान को सामने रखा जाय तो अमीर खुसरो की डेढ़-दो लाख फारसी काव्य पंक्तियाँ और उतनी ही हिन्दी की होनी चाहिये।

अमीर खुसरो के दो सौ वर्ष बाद जब मिर्जा बायसुनगुर ने उनकी सभी फारसी कविताएँ एकत्रित करने का संकल्प किया तो उन्होंने एक लाख बीस हजार काव्य-पंक्तियाँ एकत्र कीं। परन्तु इसके बाद भी मिर्जा साहब को ज्ञात हुआ कि अमीर खुसरो की अभी हजारों काव्य-पंक्तियाँ हैं। अन्त में थक कर उन्होंने एकत्र करने का कार्य बन्द कर दिया।

डॉक्टर वहीद मिर्जा के अनुमान तथा शोध के अनुसार एक कवि 'सैफी' मिर्जा बायसुनगुर के सहायकों में था। उसने अमीर खुसरो का 'दीवान' संकलित कर उस पर भूमिका भी लिखी है। यह 'दीवान', 'सेण्ट पीट्सबर्ग' की लाइब्रेरी में अब भी विद्यमान है। उस 'दीवान' की कविताओं की संख्या ज्ञात नहीं। लेकिन यदि 'सैफी' मिर्जा बायसुनगुर के सहायकों में था तो उसमें कम से कम इतनी काव्य-पंक्तियाँ तो होनी ही चाहिये, जितनी मिर्जा बायुसुनगुर ने एकत्र की थीं अर्थात् एक लाख बीस हजार काव्य-पंक्तियाँ।

अमीर खुसरो की फारसी कविताएँ आज भी पर्याप्त संख्या में विद्यमान हैं। परन्तु खेद है कि उनकी मातृभाषा हिन्दी की तीन-चार लाख काव्य-पंक्तियों में से जो 'खालिक-बारी' में सम्मिलित हैं, चार-पाँच सौ पंक्तियाँ ही हमारे पास शेष रह गयी हैं। यदि उन अवशेषों की प्रामाणिक जाँच की जाय (जो अत्यन्त कठिन है) तो यह संख्या दो सौ भी बड़ी कठिनाई से हो सकेगी। अमीर खुसरो जैसे महाकवि का इतना बड़ा कविता-भण्डार विनष्ट हो जाना एक शोचनीय विषय है और इसे कभी क्षमा नहीं किया जा सकता।

अमीर खुसरो की हिन्दी कविताएँ क्यों नष्ट हुईं – डॉक्टर वहीद मिर्जा ने अपनी पुस्तक 'अमीर खुसरो' में खुसरो की हिन्दी कविता नष्ट होने का कारण 'गुर्रतुलकमाल' की भूमिका का संकेत दिया है, जिसके अनुसार अमीर खुसरो की दृष्टि में अपनी हिन्दी कविता का कोई महत्व न था। इसलिए उन्होंने उसे एकत्र करने के बजाय मित्रों में वितरित कर दिया।

मुझे डॉक्टर साहब के इस उल्लेख पर आश्चर्य तथा खेद होता है। 'गुर्रतुलकमाल'

की भूमिका में किसी स्थान पर कोई ऐसा लेख नहीं है, जिसमें अमीर खुसरो ने संकेत किया हो कि उनकी हिन्दी कविताओं का कोई महत्त्व नहीं है। केवल एक स्थान पर अपने मित्रों को हिन्दी कविताएँ 'भेंट' करने का उल्लेख इन शब्दों में करते हैं -

'जुज्वे चन्द नज्मे हिन्दुवी नज्रे-दोस्तां कर्दा शुद।'

उनकी पुस्तक में यह काव्य-पंक्ति अपनी जगह पूर्ण है। इससे पूर्व अथवा पश्चात् एक शब्द भी इस सम्बन्ध में नहीं लिखा गया है। अमीर खुसरो द्वारा अपनी कुछ हिन्दी कविताएँ मित्रों को भेंट करना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि उनकी हिन्दी कविताएँ बहुत प्रिय एवं प्रसिद्ध थीं और उनके मित्रादि उन हिन्दी कविताओं को प्राप्त करने का निरन्तर अनुरोध करते रहते थे।

डॉक्टर वहीद मिर्जा का यह कथन बिलकुल निराधार है कि अमीर खुसरो की हिन्दी कविताएँ नष्ट होने का कारण उनकी तरफ उनकी असावधानी है। वास्तव में इस सम्बन्ध में दोष उस समय के ह्रस्व प्रवृत्ति वातावरण का है जिसमें बाजारू भाषाओं का तो महत्त्व था परन्तु मातृभाषाएँ तुच्छ और महत्त्वहीन समझी जाती थीं।

एक तरफ तो हिन्दुओं का धार्मिक वर्ग साधारण बोलियों से विमुख होकर मुर्दा संस्कृत की समाधि पर श्रद्धा के फूल चढ़ा रहा था। संस्कृत के सम्बन्ध में सबसे पहले जनप्रिय कवि 'कबीर' ने इस प्रकार कहा है -

'संस्कृत कूप जल भाखा बहता नीर।'

दूसरी तरफ मुसलमान तथा दरबारी लोग अपनी मातृभाषा को भूलकर 'फारसी' और 'अरबी' के गुलाम बन गये थे। साहित्यकारों तथा दरबारों पर फारसी छायी हुई थी और काव्य सुनने-सुनाने का कार्य इसी भाषा में होता था। इस वातावरण में अमीर खुसरो की फारसी कविता तो सुरक्षित हो सकती थी परन्तु उनकी हिन्दी कविता कौन एकत्र करता?

अमीर खुसरो को हिन्दुस्तानी होने का गर्व था - अमीर खुसरो कस्बा पटियाली में गंगा के किनारे पैदा हुए और शहर दिल्ली में यमुना के किनारे काल कवलित हुए। वह हिन्दुस्तानी थे। उनकी माता हिन्दुस्तानी थी। अधिक पान खाने वाले उनके साँवले नाना 'एमादुलमुल्क' का घराना हिन्दुस्तानी सभ्यता तथा संस्कृति का एक अद्वितीय उदाहरण था। इन सभी बातों पर अमीर खुसरो ने जगह-जगह गर्व व्यक्त किया है।

उस जमाने में अमीर खुसरो की मातृभाषा हिन्दी का शैशव-काल था, परन्तु फिर भी वह अपनी फारसी के लिए 'मिर्जा गालिब' की भाँति **'फारसी बीं ता बेबीनी नक्श हाय हाय रंग-रंग'** का नारा नहीं लगाते थे। वह तो अभिमान के साथ कहते हैं -

चू मन तूती-ए-हिन्दम् अर रास्त पुरसी।
ज मन हिन्दवी पुर्स ता नग्ज गोयम्।।

अमीर खुसरो की फारसी को ईरान वालों ने 'सादी' तथा 'हाफिज' की भाषा का स्थान दिया है, फिर भी उनमें अपनी मातृभाषा में भावों को व्यक्त करने की अधिक क्षमता होती है, जिसका संकेत उपर्युक्त पंक्तियों में 'ता नग्ज गोयम्' के भाग में मिलता है।

फारसी की भाँति अमीर खुसरो अरबी में भी समर्थ थे परन्तु उन्हें अपनी मातृभाषा हिन्दी, अरबी से उत्तम प्रतीत होती है -

तुर्के हिन्दुस्तानियम मन हिन्दवी गोयम् चू आब।
शक्कर-ए-मिस्री नदारम् कज अरब गोयम् सुखन।।

अमीर खुसरो अपनी पैतृक भाषा तुर्की पर भी हिन्दी को प्राथमिकता देते हैं -

इस्बात मुफ्त हिन्द ब हुज्जत कि राजेह अस्त।
बर पारसी व तुर्की अज अल्फाजे खुश गवार।।

स्पष्ट है कि उस जमाने में बेचारी हिन्दी क्या रही होगी। किन्तु अमीर खुसरो के दूरदर्शी नेत्रों ने इस भाषा का भविष्य देख लिया था। उनका विचार था कि इस नव उत्पन्न भाषा में फारसी तथा अरबी से अधिक संभावनाएँ विद्यमान हैं। आज अमीर खुसरो की वह भविष्यवाणी साकार प्रमाणित हुई।

हिन्दी की भाँति हिन्दुस्तानी फारसी पर भी अमीर खुसरो को गर्व था। 'मिर्जा गालिब' जैसा अद्वितीय फारसी कवि एक काल्पनिक ईरानी विद्वान् 'अब्दुस् समद' से अपनी शिष्यता का सम्बन्ध जोड़कर अपनी फारसी को प्रमाणित करने का प्रयास करता है, जिससे 'मिर्जा गालिब' की निर्बलता का पता चलता है। परन्तु अमीर खुसरो हिन्दुस्तानी फारसी को ईरानी फारसी से कम नहीं समझते।

वह 'एजाज-ए-खुसरवी' की प्रथम पुस्तक में, 'निस्बते आब बीं रवाँ व लतीफ' के शीर्षक के सम्बन्ध में लिखते हैं -

हिन्दुस्तान में प्राचीन फारसी विद्यमान है। परन्तु साथ ही साथ हिन्दुस्तान वालों

ने भी एक नये ढंग की फारसी चलायी है जिसमें अलंकारादि इस प्रकार आते हैं, जैसे चीनी की चाशनी में पानी मिला दिया जाय। 'मावराउन्नह्न' और 'खुरासान' के बर्फीले लोग इस चाशनी से वंचित हैं। (मुक्तबस)

'एजाज-ए-खुसरवी' की उसी पुस्तक में, 'निस्बते पुख्तने अल्वाने नेअम्' के शीर्षक के सम्बन्ध में वह प्राचीन फारसी के विषय में लिखते हैं -

'यह तुर्काने नखचीर गीरे सहा ओर हिन्दवाने,
माहीगीरे दरिया के खाने की तरह बदमजा है।'

(मुक्तबस)

'गुर्रतुलकमाल' की भूमिका में वह ईरानियों की मूर्खता पर कहते हैं -

'कुछ ईरान वाले जो मूर्खता की विपत्ति में फँसे हैं मेरी फारसी पर आलोचना करते हैं। मैंने भी यही चाहा कि उन मूर्खों को केवल शांतिपूर्वक उत्तर दूँ।' (मुक्तबस)

अमीर खुसरो हिन्दुस्तान को रूम, इराक तथा खुरसान आदि से उत्तम समझते थे -

तरजीहे-मुल्के हिन्द व अक्ल अज हवाय खुश।
बर रूम व बर इराक व खुरासाने बर्फ बार।।

अमीर खुसरो के निकट हिन्दुस्तान के बुद्धिमानों की तुलना में ईरानादि के बुद्धिमान तुच्छ हैं -

तरजीहे अह्ले हिन्द बर अह्ले अजम हमा।
दर जीरकी व दानिश व दिलहाय होशियार।।

अमीर खुसरो ने अपनी मसनवी 'नुह्सिपहर' में हिन्दुस्तान की प्रतिष्ठा पर दस तर्क प्रस्तुत किये हैं -

१. हिन्दुस्तान में विद्या प्रत्येक देश से अधिक है।
२. हिन्दुस्तानी संसार की सभी भाषाएँ शुद्ध बोल सकता है परन्तु दूसरे देश वाले भारतीय भाषा शुद्ध नहीं बोल सकते।
३. हिन्दुस्तान में लोग प्रत्येक देश से शिक्षा ग्रहण करने के लिए आये, किन्तु कोई ब्राह्मण शिक्षा ग्रहण करने के लिए कहीं अन्यत्र नहीं गया। 'अबु माशर' ने ज्योतिष-विद्या यहीं से प्राप्त की।
४. गणित में 'शून्य' हिन्दुस्तानी ब्राह्मण 'आसा' का अन्वेषण है।

५. 'दमना-कलैला' प्राचीन हिन्दुस्तान की रचना है, जिसके अनुवाद अन्य भाषाओं (अरबी, फारसी तथा तुर्की) में हुए हैं।
६. 'शतरंज' हिन्दुस्तान का शोध है।
७. गणित, दमना तथा शतरंज ये तीनों हिन्दुस्तान के घर-घर के 'दीप' हैं।
८. 'गीत-संगीत' हिन्दुस्तान जैसा सम्पूर्ण संसार में नहीं है।
९. यहाँ की 'संगीत-कला' जंगलों के हिरणादि तक को मोहित कर लेती है।
१०. हिन्दुस्तान का 'अमीर खुसरो' जैसा कवि सम्पूर्ण संसार में नहीं है। अपने दसवें तर्क के विषय में अमीर खुसरो कहते हैं।

हुज्जते-दह आँ कि चु 'खुसरो' ब सुखन।
सेह-गरे नीस्त तहे चर्खे कुहन।।

अमीर खुसरो ने एक पुस्तक हिन्दुस्तान की प्रशंसा में लिखी थी, जिसका उल्लेख पुस्तकों में मिलता है। परन्तु अब यह पुस्तक बिल्कुल अप्राप्य हो गयी है। उनकी विभिन्न रचनाओं में हिन्दुस्तान की प्रशंसा बड़े मनोरंजक ढंग में विद्यमान है। विशेषकर मसनवी (उर्दू पद्य की प्रकार जिसमें कोई कहानी या उपदेश एक ही वृत्त में होता है और उसका हर शेर रदीफ़ काफ़िए में नहीं मिलता) 'नुहसिपहर' में उन्होंने हिन्दुस्तान की प्रशंसा में चार-पाँच सौ काव्य-पंक्तियाँ रची हैं, जो प्रत्येक दृष्टिकोण से अद्वितीय हैं। अमीर खुसरो सच्चे देश-भक्त तथा हिन्दुस्तान के सच्चे प्रेमी थे। अपनी कविताओं में जहाँ-जहाँ वह हिन्दुस्तान की प्रशंसा करते हैं, वहाँ ऐसा प्रतीत होता है जैसे उनकी अन्तरात्मा बोल रही है। भारतीय भूमि, भारतीय इतिहास, भारतीय मौसम, भारतीय भूगोल, भारतीय पक्षी, भारतीय पेड़-पौधे, फूल, रीति-रिवाज, बुद्धि तथा ज्ञान इत्यादि पर जितनी एवं जिस प्रभाव से अमीर खुसरो ने कविताएँ लिखी हैं, उसका उदाहरण संस्कृत से लेकर हिन्दी तथा उर्दू तक शायद किसी अन्य भारतीय भाषा में न मिल सकेगा, जबकि अमीर खुसरो के समय में वतन तथा देश-भक्ति का ज्ञान बिलकुल अल्पवयस्क तथा अपरिपक्व था।

अमीर खुसरो की विशेष योग्यता तथा हिन्दुस्तान से उनके असीम प्रेम को देखकर यह अनुमान करना कठिन है कि अपनी लाखों हिन्दी कविताओं में उन्होंने क्या कुछ कहा होगा। अमीर खुसरो की जो कुछ भी कविता इस समय शेष हैं, उसका बहुत कम भाग अभिलाषा रखने वालों की पुस्तकों से तथा अधिकांश भाग जनसाधारण के सीनों से हम तक पहुँचा है। यही कारण है कि उनकी कविता का थोड़ा सा भाग केवल साहित्यिक रंग का है तथा अधिकतर भाग जनसाधारण की रुचि का है।

साहित्यिक रंग – अमीर खुसरो की उपलब्ध हिन्दी कविताओं में केवल दो दोहे, एक गजल तथा एक कत्आ (जिसमें गज़ल की तरह काफिए की पाबंदी होती है, और जिसमें कोई एक बात कही जाती हैं) साहित्यिक रंग के हैं। अप्रमाणित प्रथाओं के अनुसार इस संख्या में कुछ वृद्धि हो सकती है, किन्तु ये प्रथाएँ विश्वसनीय नहीं हैं। दो दोहे प्रस्तुत हैं –

(१)

गोरी सोयी सेज पर मुख डारे केस।
चल 'खुसरो' घर आपने रैन भयी चहुँ देस।।

(२)

'खुसरो' रैन सुहाग की, जागी पी के संग।
तन मेरा, मन पीव का, दोउ भये इक रंग।।

इन दोनों दोहों में अमीर खुसरो की वह तृप्ति गजल के रूप में दृष्टिगोचर होती है, जिसके माध्यम से ख्वाजा निजामुद्दीन अवलिया रहमतुल्लाह अलैह ईश्वर से प्रार्थना करते थे। संस्कृत का शृंगार रस इससे पृथक होता है। 'दोहे' हिन्दी में 'गजल' के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं। दोहों में भी 'गजल' ही की भाँति कल्पना केवल दो पंक्तियों में व्यक्त की जाती है। कई शताब्दियों तक 'दोहा' हिन्दी कविता में विशेष दृष्टि से देखा जाता रहा है। दोहे का अस्तित्व संस्कृत में नहीं है। यह 'प्रकार' 'अपभ्रंश' की देन है।

एक और दोहा अमीर खुसरो से सम्बन्धित किया जाता है –

सजन सकारे जायेंगे नैन मरेंगे रोय।
बिधना ऐसी रैन कर, भोर कदी न होय।।

इस दोहे की अमीर खुसरो से सम्बन्धित करने वाला साक्षी बिलकुल अयोग्य है। परन्तु इसका स्तर अमीर खुसरो ही के स्तर का है। 'फरहंग-ए-आसिफिया' की भूमिका में यह दोहा अमीर खुसरो के समकालीन कवि 'बु अली शाह कलंदर' से सम्बन्धित किया गया है और लिखा हुआ है कि 'मुबारिज खाँ' की किसी यात्रा को स्थगित कराने के लिए 'बु अली शाह कलंदर' ने यह दोहा तथा उसका निम्नांकित कवितात्मक रूप फारसी में अनुवाद कर उनको प्रेषित किया था –

मन शुनीदम् यारे मन फर्दा रबद राहे शेताब।
या इलाही या क्यामत बर न आयद आफताब।।

इन दोहों के अतिरिक्त अमीर खुसरो की प्रसिद्ध 'गजल' 'ज हाले मिस्की' भी केवल साहित्यिक रंग के अन्तर्गत आती है। इस गजल में अमीर खुसरो की तृप्ति सबसे अधिक प्रदर्शित हुई है और प्रतीत होता है कि वह फारसी की भाँति 'भाखा' में भी समर्थ थे। यह गजल सबसे पहले १८५२ ई. में डॉक्टर स्प्रिगर ने अपने निबन्ध में प्रकाशित किया है। इसलिए मैं उसका मूल लेख डॉक्टर स्प्रिगर के ही निबन्ध से अनुकरण करता हूँ।

ज हाले मिस्कीं मकुन तगाफुल दुर आय नैना बनाय बतियाँ।
कि ताबे हिज्रां न दारम् ऐ दिल न लीहू काहे लगाय छतियाँ।।
चू शमाअ-सोजाँ, चू जर्रा हैराँ, हमेशा गिरियाँ ब इश्के आँ माह।
न नींद-नैना, न अंग चैना, न आप ही आवे, न भेजे पतियाँ।।
शबाने-हिज्राँ दराज चूँ जुल्फ व रोजे वसलश चू उम्र कोताह।
सखी पिया को जो मैं न देखूँ, तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ।
यकायक अज दिल बसद फरेबम्, बेबुर्द चश्मश करार व तस्कीं।
किसे पड़ी है जो जा सुनावे, प्यारे पिव को हमारी बतियाँ।।
बहक्के-रोके-बिसाले दिलबर कि नादमारा फरेब 'खुसरो'।
दुर आय राखौं समेत साजन, जो कहने पाऊँ दो बोल बतियाँ।।

इस गजल के मूल लेख में थोड़ी आपत्ति पायी जाती है। मेरे लिए यह कहना कठिन होगा कि उनमें किसे शुद्ध कहा जाय और किसे अशुद्ध। डॉक्टर स्प्रिगर के निबंध १८५२ ई. से लगभग सौ वर्ष पूर्व भी यह गजल अमीर खुसरो ही की समझी जाती थी। मेरे पास ११३४ हिजरी का लिखा हुआ 'बु अली शाह कलंदर' का एक हस्तलेख है, जिसके पहले ही पृष्ठ पर अमीर खुसरो के नाम से इस गजल का पहला-दूसरा तथा पाँचवाँ 'शेर' लिखा है, जिसका मूल लेख जगह-जगह डॉक्टर स्प्रिगर से भिन्न है।

इस गजल में फारसी तथा 'भाखा' का सम्मिश्रण है। इसके अतिरिक्त अमीर खुसरो का दो 'शेर' का एक कत्आ फारसी तथा हिन्दी का सम्मिश्रण है, जिसे 'तजकेर-ए-निकातुश्शोअरा' में मीर तकी 'मीर' ने तथा 'तजकेर-ए-निकात' में 'कायम' ने और 'कायम' के संकेत के डॉक्टर स्प्रिगर ने अनुकरण किया है –

जर गर पेसरे चू माह पारा,
कुछ गढ़िये सँवारिये पुकारा।

नक्दे दिले मन रुबूद व विश्कस्त,
फिर कुछ न गढ़ा, न कुछ सँवारा।।।

इन दोनों दोहों, एक गजल तथा एक कत्आ के अतिरिक्त साहित्यिक रंग में अमीर खुसरो ने न जाने क्या कुछ कहा होगा।

'निकातुश्शोअरा' में मीर तकी 'मीर' ने अमीर खुसरो के लिए लिखा है -

'अश्आर-ए-ऐक्ता आं बुजुर्ग बिस्यार दारद।'

इसका अभिप्राय यह हुआ कि 'मीर' के समय तक शायद 'खुसरो' के साहित्यिक रंग की हिन्दी कविता अधिक उपलब्ध रही होगी जो अब अप्राप्त हो चुकी है। उच्च श्रेणी रखने वाले कोमल-स्वभाव मीर तकी 'मीर' पहेलियों को 'अश्आर-ए-रेख्ता' का स्थान देने वाले नहीं हैं।

साधारण रंग : केवल साहित्यिक कविताओं के अतिरिक्त अमीर खुसरो की सभी हिन्दी कविताएँ जन साधारण के माध्यम से हम तक पहुँची हैं तथा जन साधारण की रुचि की हैं। उस कविता को तुच्छ एवम् निर्बल कहकर दृष्टिविहीन करने वाले आलोचक क्षम्य हैं। वह बेचारे प्रथाओं एवं परम्पराओं के इस बुरी तरह दास हैं कि सौन्दर्य एवम् कोमलता को अपने प्राचीन प्रचलित स्तरों से उठकर देख ही नहीं सकते। अमीर खुसरो की साधारण कविताओं में भी वे विशेषताएँ हैं, जिनको एक कवि ही पैदा कर सकता है।

(१) अमीर खुसरो ने अपनी उस कविता को जन साधारण के स्तर पर रखते हुए भी उसमें अप्रिय शैली के स्थान पर सभ्यता एवम् संस्कृति को बनाये रखा है। यह कार्य किसी भाषा की प्रगति एवं विकास के बिना बहुत कठिन होता है।

(२) उनकी यह कविता 'सहले मुम्तनाअ' की अत्युत्तम उपमा है, जिसके लिए कहा गया है -

फएजा कीला अत्मअन्नासा तुर्रन,
वएजा उरीदा आजजल मोजजीन।

जब इसे पढ़ा जाय तो साधारण प्रतीत हो परन्तु जब ऐसा कहने का संकल्प किया जाय तो मानव-बुद्धि को आश्चर्य में डालने वाले विवश हो जायें।

(३) इस कविता में शब्दकोश की शिक्षा, फारसी तथा हिन्दी की लाभदायक शृंखला बहुत ही मनोरंजक ढंग से उल्लिखित है।

उदाहरण के लिए निम्नलिखित 'आइने' की पहेली है जिसमें तीन भाषाओं में 'आइने' का नाम विद्यमान है। किन्तु पढ़ने वाले को पता नहीं चलता -

फारसी बोली आई ना, (आइना)
तुर्की बोली पाई ना, (पाइना)
हिन्दी बोलो आरसी आवे, (आरसी)
कहे 'खुसरो' कोई बतलावे।

(४) इस कविता में वे नयी-नयी पद्धतियाँ अपनायी हैं, जो अमीर खुसरों से पूर्व किसी ने नहीं अपनाया। उदाहरणस्वरूप चह चौपायी प्रस्तुत है -

सगरी रैन मोरे संग जागा,
भारे भयी तो बिछुड़न लागा,
वाके बिछड़े फाटत हिया,
ऐ सखी साजन? ना सखी दिया।

देखिए किस विशेषता के साथ 'शृंगार-रस' से 'हास्य-रस' में पहुँचते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी नयी नवेली दुल्हन के दिल से रस की बूँदें टपकीं और हास्य की कली खिल गयी। फिर निबन्ध कितना अछूता है। अन्तिम पंक्ति में कथोपकथन का रंग बिलकुल नयी बात है।

(५) इस कविता की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें हिन्दी के उपरान्त मुस्लिम चिन्तन-पद्धति तथा मुस्लिम संस्कृति का रंग भी दृष्टिगोचर होता है, जो साधारणतया हिन्दी कविता में नहीं मिलता।

जन-प्रिय कवि 'कबीर' खानदानी मुसलमान हैं। परन्तु उनकी सारी चिन्तन-पद्धति हिन्दुस्तानी है। यह दूसरी बात है कि उनकी आध्यात्मिक कविताओं में कुछ गहरी दृष्टि वालों को कुछ आध्यात्मिक-समस्याएँ दृष्टिगोचर हो जायें। 'मलिक मुहम्मद जायसी', 'रसखान' तथा 'खानखानाँ' आदि की भी सम्भवतः यही स्थिति है। इन कवियों की रचनाएँ अद्वितीय एवम् अतुल्य है।

परन्तु यह भी सत्य है कि इस कविता का भारतीय मुस्लिम संस्कृति से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त अमीर खुसरो की रचना हिन्दी कविताओं की प्रथाओं के अनुसार है। इसमें 'प्रेम' नारी की तरफ से होता है। इसके रीति-रिवाज हिन्दुस्तानी हैं। किन्तु इसकी भाषा अधिकतर वह हिन्दी है, जो यहाँ के मुसलमान बोलते थे। हाँ, उसके 'भाव' में मुस्लिम संस्कृति की एक झलक विद्यमान है। सावन

में नवविवाहिता दुल्हन अपने माता-पिता के घर जाती है। यह रीति यहाँ के हिन्दू तथा मुसलमानों में समान है। अमीर खुसरो सावन के 'मल्हार गीत' के वज्न पर एक मुसलमान दुल्हन की जबानी प्रस्तुत करते हैं -

अम्माँ मेरे बाबा को भेजो जी - कि सावन आया,
बेटी तेरा बाबा तो बूढ़ा री - कि सावन आया,
अम्माँ मेरे भैया को भेजो जी - कि सावन आया,
बेटी तेरा भैया तो बाला री - कि सावन आया,
अम्मां मेरे मामूँ को भेजो जी - कि सावन आया,
बेटी तेरा मामूँ तो बाँका री - कि सावन आया।

कितना हिन्दुस्तानी भाव है। परन्तु इस 'भाव' को व्यक्त करने का माध्यम एक मुसलमान दुल्हन है। गीत में अम्माँ, बाबा, मामूँ, बेटी आदि शब्द हिन्दी बोलने वाले भारतीय मुसलमान घरानों में बोले जाते हैं। साथ ही साथ गीत का रंग भी मुसलमानी है।

वेदान्त यदि भारतीय बुद्धि को आश्चर्य में डालने वाली उड़ान है तो विष्णु भाव भी यहाँ की कला तथा संस्कृति का बहुत ही मनोरंजक सौन्दर्य है। जिस समय अध्यात्मवादी लोग हिन्दुस्तान आये तो उन्होंने हिन्दुस्तानी चिन्तन तथा संस्कृति के सौन्दर्य दोनों को पूर्ण रूप से अपनाया। वेदान्त तथा अध्यात्मवाद तो इतने निकट आये कि अधिकतर दर्शनशास्त्र के इतिहासकारों का यही विचार है कि 'अध्यात्मवाद' पर 'वेदान्त' का काफी प्रभाव है। इसी प्रकार विष्णु-भाव भी सैकड़ों वर्षों से 'अध्यात्मवाद' में पहुँच गया है।

'विष्णु' प्रेम-विज्ञान में 'नारी' प्रेमी तथा 'नर' प्रेमिका है। अपने गुरु से नारी के रूप में प्रेम व्यक्त करना वास्तव में विष्णु-भाव ही का एक रूप है। इस रंग में अमीर खुसरो की एक होली प्रस्तुत है, जिसमें वह अपने गुरु ख्वाजा निजामुद्दीन अवलिया रहमततुल्लाह अलैह से प्रेम व्यक्त कर रहे हैं -

दय्यारी मोहे भजो यारी
शाह निजाम के रंग में,
कपड़े रंगे से कुछ न होत है,
या रंग मने तन को डुबोया री-दय्यारी।

इस होली में वज्न के गीत हैं। भाव विष्णु हैं। भाषा हिन्दी है। किन्तु फिर भी

इसमें भारतीय मुसलमानों की चिन्तन-प्रणाली का रंग विद्यमान है। री, मोहे, भजोया आदि शब्द होली में हिन्दू नारियों का चरित्र-चित्रण उभारने के लिए लाये गये हैं।

डेढ़ सौ वर्षों के अन्दर अंग्रेजों के शासन-काल में भारतीय मुसलमानों की कुछ भी राजनीति रही हो किन्तु वास्तविकता यही है कि उनके समाज में प्रारम्भिक रीति-रिवाज भारतीय हैं तथा अधिकांश हिन्दुओं से मिलते-जुलते हैं। बच्चा होने से विवाह होने तक तथा विवाह से प्राणांत तक मुसलमानों के यहाँ भी गीत एवम् रीतियाँ हैं जिनकी अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। हिन्दी साहित्य ने उनका बिलकुल अंत नहीं किया है यह संस्कृति भी भारतीय सभ्यता का एक अंग है।

डॉक्टर स्प्रिंगर तथा अमीर खुसरो - अमीर खुसरो की हिन्दी कविताओं के सम्बन्ध में डॉक्टर स्प्रिगर का उल्लेख अत्यावश्यक है। शम्सुल्लाह कादरी अपनी पुस्तक 'उर्दू-ए-कदीम' में कहते हैं कि अमीर खुसरो की विभिन्न हिन्दी कविताओं का एक 'संकलन' तथा दो सौ पहेलियों का संग्रह अवध के 'शाही पुस्तकालय' में विद्यमान था। इन दोनों संग्रहों को सम्मुख रखकर अमीर खुसरो की हिन्दी कविता पर डॉक्टर स्प्रिंगर ने एक निबंध १८५४ ई. में लिखा था।

शम्सुल्लाह कादरी ने अपनी रचना में अमीर खुसरो की जिन पहेलियों की नकल की है, उनके सम्बन्ध में वह कहते हैं कि डॉक्टर स्प्रिगर के उपर्युक्त निबन्ध ही से गृहीत हैं। इस निबन्ध के साक्षी होने के उपरान्त भी वह यह नहीं बताते कि १८५४ ई. में यह निबंध कहाँ प्रकाशित हुआ था।

पहले मेरा विचार था कि अमीर खुसरो की हिन्दी कविताओं की जिन पाण्डुलिपियों का उल्लेख शम्सुल्ला कादरी ने किया है, काफी पुरानी होगी अन्यथा अवध के 'शाही पुस्तकालय' में क्यों रखी जातीं। साथ ही साथ मुझे यह भी आशंका हुई कि डॉक्टर स्प्रिगर ने कहीं उन अप्राप्य हस्तेलखों को विदेश की हवा तो नहीं खिला दी। अपना निबंध लिखते समय मैंने डॉक्टर स्प्रिंगर के निबंध तथा अवध के 'शाही-पुस्तकालय' की पाण्डुलिपियों की तलाश यहाँ से विदेशों तक करवायी किन्तु कोई परिणाम नहीं निकला।

अपने निबन्ध को जब मैंने पुस्तक का रूप देने का संकल्प किया तो इस समस्या का निवारण करने का प्रयास किया। सर्वप्रथम मैंने डॉक्टर स्प्रिंगर के 'केटलॉग' के पन्ने उलटे, जिसमें उसका केवल एक निबंध अमीर खुसरो की फारसी कविता पर मिला। इस निबंध में कोई विशेष बात नहीं है तथा यह मेरे लिए 'विषय' से परे है।

मुझे तो अमीर खुसरो की हिन्दी कविता की खोज थी।

इसके बाद 'बम्बई युनिवर्सिटी लाइब्रेरी' में १८५२ ई. का 'जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी बंगाल' मिला, जिसके पृष्ठ ५१६ से ५१६ तक डॉक्टर स्प्रिगर का एक निबंध प्रकाशित हुआ था। निबन्ध का शीर्षक था - **"Has Sady Shyraz - written" "Rekhta Verses"**। इस निबंध में अमीर खुसरो की हिन्दी कविताओं का भी उल्लेख था। डॉक्टर स्प्रिगर ने अमीर खुसरो के सम्बन्ध में अपना लेख 'कायम' के संकेत से प्रारम्भ किया है जिससे उसका अभिप्राय 'तजकेर-ए-मखजन-ए-निकात-ए-कायम' है। डॉक्टर स्प्रिगर ने लिखा है कि 'कायम' ने (खुसरो की) दो काव्य-पंक्तियाँ प्रस्तुत की हैं। कोई पहेली नहीं लिखी।

मैं 'कायम' की दी हुई कविताओं में से एक काव्य-पंक्ति प्रस्तुत करता हूँ और वह पूरी गजल लिखता हूँ, जिससे दूसरी काव्य-पंक्ति ली गयी है। इसके बाद अमीर खुसरो की प्रसिद्ध गजल 'ज हाले मिस्कीं मकुन तगाफुल' तथा उसका 'कताअ' 'जर-पर-पेसरे' अनुकरण किया है। 'तजकेर-ए-मखजन-ए-कायम' मुद्रक 'अंजुमन-तरक्की-ए-उर्दू-ए-हिन्द', औरंगाबाद, १६२६ ई. में उपर्युक्त गजल की कोई पंक्ति नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि डॉक्टर स्प्रिगर के पास 'मखजन-ए-निकात' का जो हस्तलेख था, उसमें प्राप्त लेख से अधिक सामग्री थी। यह समय का भी प्रभाव हो सकता हैं और बाबाय उर्दू मौलाना अब्दुल-हक की काट-छाँट का भी परिणाम हो सकता है। यह तो स्पष्ट है कि मौलाना साहब को हिन्दी प्रिय नहीं थी। 'खालिक-बारी' के सम्बन्ध में शीरानी साहब का दृष्टिकोण मौलाना ही के दिये हुए हस्तलेख पर निर्भर है।

इसके बाद अपने निबन्ध में डॉ. स्प्रिगर ने 'कुतुबखान-ए-तोप-खाना' लखनऊ की पाण्डुलिपियों से निम्नांकित पहेलियाँ उद्धृत की हैं -

(१)

'खुदा'

सब कोई उसको जाने है,
पर एक नहीं पहचाने है,
आठ घड़ी में लेखा है,
फिक्र क्या! अदन देखा है।

ये पहेलियाँ अमीर खुसरो की कविताओं में सम्मिलित नहीं हैं और यदि अब भी न सम्मिलित की जायें तो अच्छा है। इन पहेलियों को देखने के बाद उनके मूल लेख लखनऊ के 'कुतुबखान-ए-तोपखाना' की पाण्डुलिपियों का कोई विशेष महत्त्व शेष नहीं रहता।

प्रथम पहेली की प्रथम पंक्ति में 'सब कोई' के स्थान पर 'हर कोई' होना चाहिए। अन्यथा रदीफ 'है' के स्थान पर 'है' होगी।

दूसरी पहेली की तीसरी तथा चौथी पंक्तियों में 'भा' तथा 'चा' निरर्थक हैं।

तीसरी पहेली बिलकुल साधारण है।

चौथी पहेली में 'नवाब का झण्डा' बता रहा है कि यह पहेली अवध के नवाबी समय की उपज है।

पाँचवीं तथा छठवीं पहेलियाँ बिलकुल व्यर्थ प्रस्तुत की गयी हैं।

इसके बाद डॉक्टर स्प्रिंगर ने लिखा है कि दूसरी पहेलियाँ जो मैंने अनुकरण कर रखी है, उन्हें एक दूसरे निबन्ध में प्रस्तुत करूँगा। आगे बढ़कर वह 'खालिक-बारी' का उल्लेख करता है।

स्वयं डॉक्टर स्प्रिंगर के लेख से प्रतीत होता है कि उसका अमीर खुसरो की हिन्दी पर एक और निबन्ध लिखने का इरादा था। इस निबन्ध की गवाही शम्मुल्लाह कादरी देते हैं।

१८५२ ई. के उपलब्ध निबन्ध में डॉ. स्प्रिंगर ने केवल 'कुतुबखान-ए-तोपखाना' की उस पाण्डुलिपि का उल्लेख किया है, जिसमें ये पहेलियाँ उल्लिखित थीं। 'शम्सुल्लाह कादरी' डॉक्टर स्प्रिगर के १८५४ ई. के निबन्ध के संकेत से एक और पाण्डुलिपि का पता देते हैं, जिसमें अमीर खुसरो की हिन्दी कविताएँ उल्लिखित हैं।

शम्सुल्लाह कादरी साहित्यिक क्षेत्रों में काफी अयोग्य समझे जाते हैं। सम्भव है, यहाँ भी उन्होंने कहानी कही हो। जो भी हो, यदि वास्तव में डॉक्टर स्प्रिंगर ने कोई और निबन्ध अमीर खुसरो की हिन्दी पर लिखा है तो उसकी खोज समय के हवाले की जाती है। इस सम्बन्ध में मेरे प्रयास निरन्तर असफल रहे हैं।

अमीर खुसरो की हिन्दी कविताओं पर सन्देह – पिछले सौ वर्षों के अन्दर इस देश में जो साम्प्रदायिक तूफान आये हैं, उससे यहाँ के निवासियों के मस्तिष्क काफी विषैले हुए हैं। एक तरफ हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान का नारा लगा तो दूसरी

तरफ हिन्दी से शत्रुता यहाँ तक बढ़ी कि अवधी तथा ब्रज भाषा जैसी भाषाओं को भी ग्रामीणों की बोली बताकर उन पर दृष्टि करना भी बुरा समझा जाने लगा। अमीर खुसरो की शेष हिन्दी कविताओं का महत्त्व घटाने में बड़ी हद तक इसी तूफान का हाथ रहा है।

अत्याचार तो यह हुआ कि कुछ लोगों ने अमीर खुसरो की विद्यमान हिन्दी कविताओं को उनकी रचना ही मानने से इंकार कर दिया है। इस बहस के दो भाग हैं, जिसमें से एक भाग अमीर खुसरो की प्रसिद्ध कविता 'खालिक-बारी' से सम्बन्धित है। प्रोफेसर महमूद शीरानी ने बड़ी परिश्रम से यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि 'खालिक बारी' के लेखक अमीर खुसरो नहीं हैं।

शीरानी साहब के इस दृष्टिकोण पर आगे चलकर प्रकाश डाला जायेगा।

यह सत्य है कि अमीर खुसरो की शेष हिन्दी कवितओं में परिवर्तन का काफी अधिकार है। हम उस कविता के कुछ भागों पर संदेह व्यक्त कर सकते हैं। परन्तु इस आशंका के कारण अमीर खुसरो की सभी हिन्दी कविताओं से सम्बन्ध नहीं तोड़ा जा सकता।

इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि अमीर खुसरो हिन्दी के एक बहुत बड़े कवि हैं। परन्तु इतिहास ने उन्हें एक ऐसे समय में पैदा किया जिस समय तक साधारण बोलियों के साहित्य को एकत्रित करने का कार्य आरम्भ नहीं हुआ था। यह हमारा सौभाग्य है कि आज भी अमीर खुसरो की हिन्दी कविता अच्छी स्थिति में हमारे पास शेष हैं। निःसन्देह यह अमीर खुसरो के महान व्यक्तित्व का प्रभाव है।

अमीर खुसरो से सौ-डेढ़ सौ वर्ष बाद जनप्रिय कवि 'कबीर' पैदा हुए। उनकी कविताओं में भी परिवर्तन अत्यधिक बढ़े हुए हैं। किन्तु इसके उपरान्त 'कबीर' की कविताएँ आज भी 'कबीर' ही से सम्बन्धित हैं, तथा साहित्यिक क्षेत्रों में उनका एक महत्वपूर्ण स्थान है। फिर साधारण परिवर्तन के कारण अमीर खुसरो की कविताओं का सम्बन्ध उनसे कैसे तोड़ा जा सकता है।

परिवर्तन - इस समय अमीर खुसरो की हिन्दी कविता नमूने से भी कम शेष रह गयी है। यह संक्षिप्त कविता स्वयम् एक प्रामाणिक प्रमाण मानी जाती है। परन्तु इसके उपरान्त चूँकि यह कविता सात सौ वर्षों से जनसाधारण के सामान्य वातावरण में रही है इसलिए इसमें परिवर्तन का हो जाना एक मानने योग्य बात है। बिना साहित्यिक संरक्षता के जिन साहित्यों के अधिष्ठाता स्वतंत्र जनसाधारण होते हैं, उनमें सदैव इस प्रकार के परिवर्तन स्वतः हो जाते हैं।

(२)

'खुदा'

सब सखियन का पिया प्यारा; सबमें है और सब सूँ न्यारा।
बाकी आन मुझे यह भा; जाकी है बिन देखी चा।

(३)

'नात'

एक पुरुख है दई सँवारा,
दुनियाँ का नस्तारन हारा,
वाके चरनों लाग रहो,
ज्यादा बचन न मुँह से कहो।

(४)

'चिराग'

तेली का तेल - कुम्हार का हण्डा,
हाथी की सूँड - नवाब का झण्डा।

(५)

'खरबूजा'

दस नारी का एक ही नर,
बस्ती बाहर वाका घर
पीठ सख्त और पेट नर्म,
मुँह मीठा तासीर गर्म।

भंगी (हलालखोर)

कमायी अपनी फेंक दे, और जी पर नहीं मलाल,
वा से क्यों हट जात है, जे रोजी खाये हलाल।

ये पहेलियाँ अमीर खुसरो की कविताओं में सम्मिलित नहीं हैं और यदि अब भी न सम्मिलित की जायें तो अच्छा है। इन पहेलियों को देखने के बाद उनके मूल लेख लखनऊ के 'कुतुबखान-ए-तोपखाना' की पाण्डुलिपियों का कोई विशेष महत्त्व शेष नहीं रहता।

प्रथम पहेली की प्रथम पंक्ति में 'सब कोई' के स्थान पर 'हर कोई' होना चाहिए। अन्यथा रदीफ 'है' के स्थान पर 'है' होगी।

दूसरी पहेली की तीसरी तथा चौथी पंक्तियों में 'भा' तथा 'चा' निरर्थक हैं।

तीसरी पहेली बिलकुल साधारण है।

चौथी पहेली में 'नवाब का झण्डा' बता रहा है कि यह पहेली अवध के नवाबी समय की उपज है।

पाँचवीं तथा छठवीं पहेलियाँ बिलकुल व्यर्थ प्रस्तुत की गयी हैं।

इसके बाद डॉक्टर स्प्रिगर ने लिखा है कि दूसरी पहेलियाँ जो मैंने अनुकरण कर रखी है, उन्हें एक दूसरे निबन्ध में प्रस्तुत करूँगा। आगे बढ़कर वह 'खालिक-बारी' का उल्लेख करता है।

स्वयं डॉक्टर स्प्रिगर के लेख से प्रतीत होता है कि उसका अमीर खुसरो की हिन्दी पर एक और निबन्ध लिखने का इरादा था। इस निबन्ध की गवाही शम्मुल्लाह कादरी देते हैं।

१८५२ ई. के उपलब्ध निबन्ध में डॉ. स्प्रिगर ने केवल 'कुतुबखान-ए-तोपखाना' की उस पाण्डुलिपि का उल्लेख किया है, जिसमें ये पहेलियाँ उल्लिखित थीं। 'शम्सुल्लाह कादरी' डॉक्टर स्प्रिगर के १८५४ ई. के निबन्ध के संकेत से एक और पाण्डुलिपि का पता देते हैं, जिसमें अमीर खुसरो की हिन्दी कविताएँ उल्लिखित हैं।

शम्सुल्लाह कादरी साहित्यिक क्षेत्रों में काफी अयोग्य समझे जाते हैं। सम्भव है, यहाँ भी उन्होंने कहानी कही हो। जो भी हो, यदि वास्तव में डॉक्टर स्प्रिगर ने कोई और निबन्ध अमीर खुसरो की हिन्दी पर लिखा है तो उसकी खोज समय के हवाले की जाती है। इस सम्बन्ध में मेरे प्रयास निरन्तर असफल रहे हैं।

अमीर खुसरो की हिन्दी कविताओं पर सन्देह – पिछले सौ वर्षों के अन्दर इस देश में जो साम्प्रदायिक तूफान आये हैं, उससे यहाँ के निवासियों के मस्तिष्क काफी विषैले हुए हैं। एक तरफ हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान का नारा लगा तो दूसरी

तरफ हिन्दी से शत्रुता यहाँ तक बढ़ी कि अवधी तथा ब्रज भाषा जैसी भाषाओं को भी ग्रामीणों की बोली बताकर उन पर दृष्टि करना भी बुरा समझा जाने लगा। अमीर खुसरो की शेष हिन्दी कविताओं का महत्त्व घटाने में बड़ी हद तक इसी तूफान का हाथ रहा है।

अत्याचार तो यह हुआ कि कुछ लोगों ने अमीर खुसरो की विद्यमान हिन्दी कविताओं को उनकी रचना ही मानने से इंकार कर दिया है। इस बहस के दो भाग हैं, जिसमें से एक भाग अमीर खुसरो की प्रसिद्ध कविता 'खालिक-बारी' से सम्बन्धित है। प्रोफेसर महमूद शीरानी ने बड़ी परिश्रम से यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि 'खालिक बारी' के लेखक अमीर खुसरो नहीं हैं।

शीरानी साहब के इस दृष्टिकोण पर आगे चलकर प्रकाश डाला जायेगा।

यह सत्य है कि अमीर खुसरो की शेष हिन्दी कवितओं में परिवर्तन का काफी अधिकार है। हम उस कविता के कुछ भागों पर संदेह व्यक्त कर सकते हैं। परन्तु इस आशंका के कारण अमीर खुसरो की सभी हिन्दी कविताओं से सम्बन्ध नहीं तोड़ा जा सकता।

इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि अमीर खुसरो हिन्दी के एक बहुत बड़े कवि हैं। परन्तु इतिहास ने उन्हें एक ऐसे समय में पैदा किया जिस समय तक साधारण बोलियों के साहित्य को एकत्रित करने का कार्य आरम्भ नहीं हुआ था। यह हमारा सौभाग्य है कि आज भी अमीर खुसरो की हिन्दी कविता अच्छी स्थिति में हमारे पास शेष हैं। निःसन्देह यह अमीर खुसरो के महान व्यक्तित्व का प्रभाव है।

अमीर खुसरो से सौ-डेढ़ सौ वर्ष बाद जनप्रिय कवि 'कबीर' पैदा हुए। उनकी कविताओं में भी परिवर्तन अत्यधिक बढ़े हुए हैं। किन्तु इसके उपरान्त 'कबीर' की कविताएँ आज भी 'कबीर' ही से सम्बन्धित हैं, तथा साहित्यिक क्षेत्रों में उनका एक महत्वपूर्ण स्थान है। फिर साधारण परिवर्तन के कारण अमीर खुसरो की कविताओं का सम्बन्ध उनसे कैसे तोड़ा जा सकता है।

परिवर्तन - इस समय अमीर खुसरो की हिन्दी कविता नमूने से भी कम शेष रह गयी है। यह संक्षिप्त कविता स्वयम् एक प्रामाणिक प्रमाण मानी जाती है। परन्तु इसके उपरान्त चूँकि यह कविता सात सौ वर्षों से जनसाधारण के सामान्य वातावरण में रही है इसलिए इसमें परिवर्तन का हो जाना एक मानने योग्य बात है। बिना साहित्यिक संरक्षता के जिन साहित्यों के अधिष्ठाता स्वतंत्र जनसाधारण होते हैं, उनमें सदैव इस प्रकार के परिवर्तन स्वतः हो जाते हैं।

यह सत्य है कि अमीर खुसरो की हिन्दी कविताओं को अब उन परिवर्तनों से मुक्त करना असम्भव है। परन्तु फिर भी प्रमाणों से परिवर्तनीय भाग किसी न किसी सीमा तक पृथक हो सकते हैं। उदाहरण के लिए बन्दूक की निम्नलिखित पहेली शोधकर्ताओं की दृष्टि में बिलकुल अमीर खुसरो की नहीं है क्योंकि उनके समय में बन्दूक नहीं थी –

एक नार वह ऊख खावे,
जिस पर थूके वह मर जावे,
उसका पिया छाती से लगावे,
अन्धा नहीं काना हो जावे।

अर्थ की त्रुटि के अतिरिक्त इस पहेली की चारों पंक्तियों में एक फूहड़पन है और अमीर खुसरो आपाद मस्तक सुशील थे।

डॉक्टर वहीद मिर्जा ने कुछ और पहेलियों पर आशंका व्यक्त की है। उदाहरण के लिए 'आइने' की पहेली प्रस्तुत है –

'हाथ में लीजिये – देखा कीजिये।'

डॉक्टर साहब ने अपने सन्देह का कारण नहीं बताया। मैं तो इस पहेली को अमीर से इसलिए सम्बन्धित नहीं कर सकता कि इसका अर्थ बिलकुल मिथ्या है। 'हाथ में लीजिये – देखा कीजिये' किसी भी अच्छी वस्तु के लिए कहा जा सकता है। इस पहेली का यथार्थ उ त्तर 'आइना' नहीं हो सकता।

हुक्के और चिलम की इस पहेली को भी डॉक्टर साहब सन्देहास्पद मानते हैं –

नयी की धेली – पुरानी की तंग,
बूझो तो बूझो – नहीं चलो मेरे संग।

अमीर खुसरो के समय तक हुक्के और चिलम प्रचलित नहीं थे। अतएव डॉक्टर साहब इसे अमीर खुसरो की पहेली स्वीकार नहीं करते। मेरे निकट 'नयी' का मूल्य 'धेली' तथा 'पुरानी' का मूल्य 'तंग' (लगभग दमड़ी) का उचित उत्तर हुक्का और चिलम नहीं होता 'धेले' की 'नयी' तथा 'दमड़ी' की 'पुरानी' सैकड़ों वस्तुएँ हो सकती हैं। उदाहरण के लिए 'हाण्डी', जो अधिक विश्वस्त है। परन्तु इस पहेली में कोई बुद्धिमानी तथा नवीनता नहीं है। इसलिए मैं इसे अमीर खुसरो से सम्बन्धित करने पर जोर नहीं दूँगा।

डॉक्टर वहीद मिर्जा ने एक अन्य पहेली 'चूड़ियों' की नक्ल की है –

चटाक – पटाख कब से,
हाथ पकड़ा है जब से।

इस पहेली की चार पंक्तियाँ और हैं जिनमें अश्लीलता आ गयी है। शायद डॉक्टर साहब इसीलिए इसे अमीर खुसरो से सम्बन्धित करना नहीं चाहते।

मैं इस सम्बन्ध में डॉक्टर साहब का विरोध नहीं करूँगा, किन्तु यह भी बता देना अत्यावश्यक है कि अमीर खुसरो 'हिन्दी' तथा फारसी दोनों में ही ऐसी सभ्यता से गिरी हुई 'अशिष्टता' कर गये हैं। यह बात केवल अमीर खुसरो के सम्बन्ध में ही नहीं, हिन्दुस्तान तथा ईरान के बड़े-बड़े कुशल कलाकारों के मामले में भी जगह-जगह दृष्टिगोचर होती है। शायद पुराने लोग उचित रूप से साहित्य में आ जाने के बाद 'अश्लीलता' को केवल प्रकृति की चपलता समझते थे।

उस समय के प्रसिद्ध शोधकर्ता काजी अब्दुल वदूद साहब ने एक निबन्ध 'आजाद बहैसियत मुहक्किक', मुद्रक नवाय-अदब, बम्बई में अमीर खुसरो के बताये हुए बाजारू नारियों के इस ढकोसले पर संदेह व्यक्त किया है –

औरों की चौ पहरी बाजे, चम्मो की आठ पहरी,
बाहर का कोई आय नहीं, आयें सारे शहरी।
साफ-सूफ कर आगे रखे जिसमें नाहीं तूसल,
औरों के जहाँ सींग समावे, चम्मो के वहाँ मूसल।।

भाँग बेचने वाली चम्मो बाजारू स्त्री पर गढ़ा हुआ यह एक ढकोसला है, जिसकी घटना का उल्लेख करने में मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आजाद' ने अपने समय की दिल्ली का रंग पैदा करना चाहा और लिख गये कि चम्मो आते-जाते अमीर खुसरो को 'हुक्का' पिलाती थी। तम्बाकू और हुक्का अमीर खुसरो के समय तक प्रचलित ही नहीं था। इस त्रुटि के कारण काजी साहब का विचार है कि चम्मो का ढकोसला 'आजाद' ने गढ़ा है।

मैं काजी साहब की राय को इस हद तक अवश्य स्वीकार कर सकता हूँ कि 'आजाद' ने बात बढ़ा-चढ़ा कर बयान की है। किन्तु बाजारू स्त्री चम्मो की प्रशंसा में ढकोसला भी 'आजाद' ने लिखा है, यह बात विश्वसनीय नहीं प्रतीत होती। होगा यह कि यह प्रथा 'आजाद' को संक्षेप में मिली होगी, जिसे उन्होंने नाना प्रकार के रंग मिलाकर लिख दिया होगा। कलाकार 'आजाद' भी शोधकर्ता 'आजाद' के साथ बराबर

काम करता रहता था। जो भी हो, मैं चम्मो के इस ढकोसले को अमीर खुसरो ही का समझता हूँ, जबकि कवि ने 'चम्मो' का ढकोसला भी 'चम्मो' ही के स्तर का गढ़ा है।

'आब-ए-हयात' में अमीर खुसरो के 'तुक' बैठाने के सम्बन्ध में एक और परम्परा बयान की गयी है कि अमीर खुसरो एक दिन घूमते-फिरते शहर के बाहर निकल गये। वहाँ कुएँ पर चार पनिहारिनों ने उन्हें चार असमान शब्द – 'खीर, चर्खा, कुत्ता तथा ढोल' दिये और अमीर खुसरो ने अविलम्ब उन पर 'तुक' बैठा दिया –

खीर पकाई जतन से, चर्खा दिया चला।
कुत्ता आया खा गया, तू बैठा ढोल बजा।।

इस 'तुकबन्दी' को कुछ लोग अमीर खुसरो के लिए झूठी प्रशंसा समझते हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि चार असमान शब्दों को अविलम्ब सम्बन्ध देकर एक अर्थपूर्ण कविता बना देना अमीर खुसरो जैसे कुशल कलाकार का ही कार्य था। फिर कविता का अर्थ भी पनहारिनों के सम्बन्ध से उन्हीं के स्तर का रखा, जिससे वे आनन्दित हो सकें। 'गजलयात', 'कसायद', 'लैला-मजनू' तथा 'नुह सिप्हर' के लेखक का सादगी की इस सीमा तक आना उसके कमालों का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

ग्रामीण पनहारिनों से अमीर खुसरो रहमतुल्लाह अलैह का बात करना जिन्हें पसन्द न हो वे पहले कवि को देखें और उसके व्यक्तित्व को पहचानने की नजर पैदा करें।

पनहारिनों की भाँति कवि को असमान शब्द देकर उससे अर्थपूर्ण कविता कहलाने की प्रथा उस जमाने में बहुत प्रचलित थी। जब अमीर खुसरो दस वर्ष के थे तो इसी तरह उस जमाने के विद्वान 'काजी अजीजुद्दीन' के अनुरोध पर उन्होंने 'मू, बैजा तीर तथा खरपुजा', इन चार, असमान शब्दों को एक फारसी चौपदे में अविलम्ब कह दिया –

हर मूये कि दर दो जुल्फ आँ सनम अस्त,
सद बैज-ए-अम्बरीं बर आँ मूये जम अस्त,
चूँ तीर मदाँ रास्त दिलशरा जीरा,
चूँ खरपुजा ददांश मियाने शिकम् अस्त।

बड़ा अच्छा चौपदा है परन्तु अमीर खुसरो ने पनिहारिनों को जो 'भेंट' दिया है, वह इससे कहीं अच्छा है।

अमीर खुसरो की हिन्दी कविताओं में वृद्धि – पहले समय में जब शोध का कार्य नहीं होता था, अमीर खुसरो की हिन्दी कविताओं में जो परिवर्तन हुए हैं, वे बिलकुल निरर्थक हैं। परन्तु आज जब शोधकार्य काफी प्रगति कर चुका है, इस कविता के संकलन में कोई नयी वृद्धि बिना उचित जाँच-पड़ताल के स्वीकार नहीं की जा सकती।

अमीर खुसरो की कुछ हिन्दी कविताएँ तो ऐसी हैं, जो उन्हीं की स्वीकार की गयी हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी हिन्दी कविताएँ भी हैं, जो अज्ञानता एवं असावधानी के कारण कुछ लोगों ने अमीर खुसरो के अवशेषों में सम्मिलित कर दिये हैं। इस ओर यदि तुरन्त ध्यान न दिया गया तो भविष्य में शोध-कार्य करने वालों के लिए कठिनाइयाँ और अधिक उत्पन्न हो जायेंगी।

अमीर खुसरो के सर्वमान्य हिन्दी अवशेषों पर मैं पिछले पृष्ठों में संक्षेप में विचार व्यक्त कर चुका हूँ। अब उन नयी वृद्धियों पर विचार किया जायेगा, जो जगह-जगह अमीर खुसरो की हिन्दी कविताओं के सम्बन्ध में मुझे नजर आयी हैं। इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम मेरी दृष्टि उर्दू के महान शोधकर्ता प्रोफेसर महमूद शीरानी की प्रसिद्ध रचना 'पंजाब में उर्दू' पर जाती है और जी चाहता है कि इस पुस्तक से वे पृष्ठ अलग कर दिये जायँ, जिनमें प्रोफेसर सिराजुद्दीन 'आजर' की किसी पाकेट बुक से अमीर खुसरो की निम्नलिखित कविता प्रकाशित कराकर मुद्रक की स्याही तथा पुस्तक का कागज आदि खराब किया गया है। यह काल्पनिक कविता प्रस्तुत है। अनुशीलन कीजिए –

वह गये बालम वह गये नदिव किनार,
आप पार उतर गये हमतो रहे अरवार,
भाई रे मिला जो हमको पर उतार,
हाथ दिवुंगी मुंदरा, गले का दिवुंगी हार,
देख मैं अपने हाल को रोऊँ जार व जार,
बेकन दत्ता बहुत हैं, हम हैं अब गुनहार,
बाबुल भेजी मैं वंज को नादाँ को फूल,
हो झा वंजा, धा जिया ना लाहा मूल,
चकवा चकवी दो जने उनको मारो न को,
ओह मारे करतार के रैन बिछोड़ी हो,

सज धजती देख के रोऊँ मैं दिन रैन,
पिया करती मैं फिरूँ, पल भर सुख न चैन,
सिय नार बिन सुख सेवें कुंतान की गुल ला,
मैं दुखियारी जनम की दूखी गयी बहा,
ताजी छुटा देस में कस्बे पड़ी पुकार,
दरवाजे दबते रह गये निकल गये असवार,
गोरी सोये पलंग पर मुख पर डारे केस,
चल 'खुसरो' घर आपने साँझ पड़ी चहुँ देस।

इस अनुचित बकवास को अमीर खुसरो की कविता कहकर उसके प्रकाशन की नीति तो शीरानी साहब जानते होंगे। मैं तो केवल इतना ही कहूँगा कि आदरणीय प्रोफेसर सिराजुद्दीन 'आजर' की सम्बन्धित पाकेटबुक के 'कातिब' को हिन्दी भाषा से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। यहाँ तक कि वह उचित स्वभाव से भी वंचित है। ऐसे अशिक्षित 'कातिब' के लेख पर हम अमीर खुसरो की कविता में वृद्धि का महत्त्वपूर्ण कदम नहीं उठा सकते। इन बकवासों में केवल अन्तिम दोहा अमीर खुसरो का है, जो उनकी प्रत्येक हिन्दी कविता के संकलन में विद्यमान है। किन्तु 'कातिब' ने उसे भी अपूर्ण तथा अनुचित बना दिया है।

नीचे अमीर खुसरो से सम्बन्धित एक और गजल 'पंजाब में उर्दू' से अनुकरण की जाती है –

'गजल'

जब यार देखा नैन भर, दिल की गयी चिन्ता उतर।
ऐसा नहीं कोई अजब, राखे इसे समझाय कर।
जब आँख से ओझल भया, तड़पन लगा मेरा जिया।
हक्का इलाही क्या किया, आँसू चले भर लाय कर।
तूँ तो हमारा यार है, तुम पर हमारा प्यार है।
तुझ दोस्ती बिस्यार है, इक शब मिलो तुम आय कर।
जानाँ तलब तेरी करूँ, दीगर तलब किसकी करूँ।
तेरी जो चिन्ता दिल धरूँ, इक दिन मिलो तुम आय कर।
मेरा जो मन तुमने लिया, तुमने उठा गम को दिया।
गम ने मुझे ऐसा किया, जैसा पतिंगा आग पर।

'खुसरो' कहे बाताँ गजब, दिल में न लावे कुछ अजब।
कुदरत खुदा की है अजब, जब जिव दिया गुल लाय कर।

यह गजल भी शीरानी साहब ने प्रोफेसर सिराजुद्दीन 'आजर' की किसी ऐसी पाकेटबुक से अनुकरण किया है, जिसके लिखने का समय उनके कथनानुसार तेरहवीं सदी हिजरी के प्रारम्भिक वर्ष हैं। यहाँ भी 'कातिब' पाकेटबुक की भाषा से इतना अनभिज्ञ है कि किसी प्राचीन दक्षिणी कवि की गलत 'तुकबंदी' को अमीर खुसरो की 'गजल' बता रहा है। 'जब यार देखा नैन भर', 'ऐसा नहीं कोई अजब', 'ओझल भया लाय कर', 'हक्का इलाही क्या किया' तथा 'बाताँ गजब' इत्यादि ये सब दक्षिणी बोली के अंश हैं, जो आज भी दक्षिणी मुसलमानों के घरों में बोले जाते हैं। यह 'गजल' बिलकुल अमीर खुसरो की नहीं हो सकती।

निम्नलिखित 'कतूआ' भी 'पंजाब में उर्दू' में शीरानी साहब ने 'फरहंग-ए-आसिफिया' के हवाले से अमीर खुसरो का बताया है –

'कतूआ'

हिन्दू बच्च-ए-वीं कि अजब हुस्न धरे छे,
बर वक्त सुखन गुफ्तन मुख फूल झड़े छे,
गुफ्तम् जे लवे-ताले-तू यक बोसा बेगीरम्,
गुफ्ता कि 'अरे राम तुरुक कायं करे छे।'

'फरहंग-ए-आसिफिया' की भूमिका में इस 'कतूआ' को अमीर खुसरो से सम्बन्धित तो किया है किन्तु इसके मूल लेख का कोई संकेत नहीं किया है। 'कतूआ' में 'छे' गुजराती तथा 'कायं' (काय) मराठी इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि यह दक्षिण में बसे हुए किसी छोटे-मोटे कवि की कविता है, जिसने अपने एक प्राचीन अनुभव को कविता का रूप दिया है। यह 'कतूआ' भी अमीर खुसरो का नहीं हो सकता।

पुरानी उर्दू में 'शम्सुल्लाह कादरी' ने निम्नलिखित 'गजल' अमीर खुसरो की बतायी है। परन्तु इसके मूल लेख का पता नहीं दिया –

ख्वार शुदम्-जार शुदम् लुट गया,
दर गमे हिज्रे तू कमर टूटा है,
यार नहीं देखता है सूय-मन,
बेगुनह हम साथ अजब रोटा है।

रूय तू रौनक शिकने-आफताब,
सर्व ब पेशे कदे तू बूटा है,
गाह ज 'खुसरो' तून गुफ्ता कि बैठ,
वह चे कुनद् भाग मेरा फूटा है।

इस गजल को क्यों परिहास बनाया गया है, मेरी समझ में नहीं आता। अमीर खुसरो भाषा के ज्ञाता थे। वह 'कमर टूटा है', 'हम साथ अजब रोटा है' इत्यादि क्यों कहते? कुछ संशोधनों के साथ यही 'गजल' हुमायूं के समय के एक कवि 'जमाली' से सम्बन्धित है जो संभवतः हिन्दुस्तानी भाषा की कविता के दावेदार होंगे। 'जमाली' का 'मक्ताअ' इस प्रकार है -

गाह न गुफ्ता कि 'जमाली' तू बैठ,
थुम करो क्या करना करम फूटा है।

डॉक्टर शुजाअत अली सण्डीलवी ने अपनी रचना 'अमीर खुसरो' और उनकी हिन्दी शायरी में मूल लेख का संकेत किये बिना निम्नांकित दोहा अमीर खुसरो का बताया है -

श्याम सेत गोरी के जन्नत भयी ईंत,
एक पल में फिर जात हैं जोगी काके मीत।

यह दोहा भी अमीर खुसरो का नहीं हो सकता। इसकी प्रथम पंक्ति निरर्थक और दूसरी पंक्ति से सम्बन्ध-विहीन है। अर्थात् प्रथम पंक्ति की भाषा अमीर खुसरो की भाषा से भिन्न है।

'अलीगढ़ तारीख-ए-अदब-ए-उर्दू', प्रथम भाग की भूमिका में डॉक्टर मसऊद हुसेन ने अमीर खुसरो की हिन्दी कविता का प्रथम प्रमाणित लेख 'वजूही' दक्षिणी का 'सबरस' १०४५ हिजरी का लिखा हुआ बताया है, जिसमें अमीर खुसरो के निम्नांकित दोहे का अनुकरण किया है -

पंखा होकर मैं डली, साकी तेरा चाव
मुझ जले जनम गया तेरे लेखन बाव।

वास्तविकता यह है कि 'वजूही' सबसे प्राचीन लेखक है, जिसने अमीर खुसरो का एक हिन्दी दोहा प्रस्तुत किया है। परन्तु उसका प्रस्तुत किया हुआ दोहा बिलकुल निरर्थक है, जबकि उसकी 'कविता-प्रणाली' तथा 'चिन्तन-पद्धति' अमीर खुसरो के

उल्लेख तथा चिन्तन से अधिक दक्षिण के उल्लेख तथा चिन्तन के निकट है। इस दोहे को अमीर खुसरो की प्रचलित हिन्दी कविता में सम्मिलित नहीं किया गया है। मैं भी इसे अमीर खुसरो से सम्बन्धित करने का परामर्श नहीं दे सकता।

अमीर खुसरो की मातृभाषा - अमीर खुसरो ने अपनी गद्य और पद्य रचना में अपनी मातृभाषा को 'हिन्दवी' कहा है। परन्तु मसनवी 'नुह सिपूहर' में उन्होंने अपने समय की हिन्दुस्तानी भाषाओं की सूची इन शब्दों में प्रस्तुत की है -

(१) सिंधी (२) लाहौरी (३) कश्मीरी (४) कन्नड़ (५) धुर-समुद्री (तमिल) (६) तिलंगी (तेलुगु) (७) गुजर (गुजराती) (८) माबरी (घाटी) (९) गोरी (पहाड़ी) (१०) बंगाली (११) अवध (अवधी) (१२) दिल्ली तथा उसके आस-पास - अन्दर हमा हद।

ई हमा हिन्दवीस्त ज अय्यामे - कुहन,
आम्मा ब कार अस्त ब हर गूना सुखन।

यहाँ अमीर खुसरो ने हिन्दुस्तान की बारह भाषाओं का उल्लेख किया है और उन सबको 'हिन्दवी' बताया है। इस विवरण के बाद अमीर खुसरो की मातृभाषा को 'देहलवी हिन्दवी' कहना चाहिये, जो उपर्युक्त सूची की बारहवीं भाषा है और जिसकी अमीर खुसरो दिल्ली तथा दिल्ली के आस-पास की भाषा बताते हैं।

यह 'हिन्दवी' वही खड़ी बोली है, जो उस समय मुख्यतया दिल्ली के मुसलमान तथा सामान्यतया दिल्ली वाले बोलते थे। मसऊद सादसलमान को (जो अमीर खुसरो से लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व हुए हैं) अमीर खुसरो 'हिन्दवी कवि' कहते हैं। मसऊद सादसलमान की जन्मभूमि लाहौर है और अधिकांश लोग यही कहते हैं कि उनकी गजलों की रचना 'लाहौरी हिन्दवी' में होगी, जो उपर्युक्त सूची की दूसरी भाषा है तथा 'देहलवी हिन्दवी' से भिन्न है। 'लाहौरी हिन्दवी' की 'पंजाबी' कहा जायेगा।

यह बात तो सत्य है कि अमीर खुसरो जिस भाषा को 'देहलवी हिन्दवी' कहते हैं, वह खड़ी बोली है। इसी को आज 'उर्दू-हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी' कहा जाता है। अमीर खुसरो के समय में यह भाषा 'अरबी लिपि' में लिखी जाती थी। फारसी तथा उर्दू लिपि बादशाह शाहजहाँ के समय से प्रारम्भ हुई। नागरी लिपि में लिखी जाने वाली साधारण बोलियों को 'ब्रजभाषा' के सम्बन्ध से 'भाषा' कहा गया है। आगे चलकर 'भाखा' का शब्द 'ब्रज-अवधी-राजस्थानी' तथा उत्तरी भारत की सभी साधारण बोलियों के समान हो गया।

अमीर खुसरो की शेष कविताएँ सामान्यतया देहलवी हिन्दी में हैं। परन्तु उनमें

गीत तथा दोहे 'भाखा' में भी हैं। यहाँ तक कि उनकी रचना 'खालिक-बारी' में भी जगह-जगह 'भाखा' के वाक्य आ गये हैं, जबकि रचना का वास्तविक अनुलेख फारसी है तथा रचना का उद्‌देश्य 'देहलवी-हिन्दी' के शब्दकोश की शिक्षा हिन्दी शब्दों को फारसी शब्दों के समक्ष रखकर उनके स्तर का 'अर्थ' निर्धारित करना है। उस समय तक देश की किसी हिन्दी भाषा का कोई शब्दकोश नहीं लिखा गया था। यहाँ तक कि फारसी का प्रथम भारतीय शब्दकोश 'फरहंग-नाम-ए-कव्वास' भी नहीं लिखा गया था।

'खालिक-बारी' में 'भाखा' के वाक्य लाने से अमीर खुसरो का अभिप्राय शायद यह हो कि जो बच्चे अपने घर में 'भाखा' बोलते हैं, उनके मस्तिष्क भी इस रचना के साथ जुड़ जायँ। 'खालिक-बारी' में 'भाखा' का सामान्य रूप प्रस्तुत है -

'खाक धूल जो बाव उड़ानी' (मिट्‌टी-धूल जो हवा में उड़ी) साधारणतया स्त्रीलिंग का यही रूप 'कबीर' की अवधी में भी है -

नलिनी तू काहे कुम्हलानी,
तैर ले मानसरोवर पानी।

स्वयं अमीर खुसरो यही बात एक पहेली में कहते हैं -

एक नार पिया को भानी,
तन वाको सगड़ा जू पानी।

'खालिक-बारी' में साधारणतया पुलिंग का रूप 'भाषा' में प्रस्तुत है -

तुरा बेगुफ्तम् 'मैं तुझ कहिया'

यही साधारण बात 'कबीर' के यहाँ विद्यमान है -

दौड़त-दौड़त दौड़या, जब तक मन की दौड़,
दौड़ थके मन थर भया, वस्तु ठौर की ठौर।

अमीर खुसरो की देहलवी हिन्दी में साधारणतया वह रूप आज भी प्रचलित है -

बाला था तब सबको भाया,
बड़ा हुआ कुछ काम न आया।

देहलवी हिन्दी के साथ अमीर खुसरो की रचना में 'भाखा' की अधिकता देखकर यह प्रतीत होता है कि उत्तरी हिन्दुस्तान की कई सामान्य बोलियाँ देहलवी हिन्दी के साथ-साथ दिल्ली में उपलब्ध थीं, बिलकुल उसी तरह जैसे आज बम्बई की किसी गली

में 'मराठी, गुजराती, कच्छी तथा उर्दू' एक साथ बोली जाती हैं। परन्तु उस समय की दिल्ली की मिली-जुली तथा प्रसिद्ध भाषा 'देहलवी हिन्दी' ही थी।

शताब्दियों तक हिन्दुस्तान के विभिन्न भागों की जनता के परिवर्तनों के कारण अमीर खुसरो की हिन्दी रचना उनके समय की भाषा बिलकुल साफ चित्र तो नहीं प्रस्तुत कर सकती, किन्तु फिर भी, उनके उपलब्ध हिन्दी-भण्डार से उनकी देहलवी हिन्दी का एक अनुमानित चित्र हमारे मस्तिष्क में अवश्य आ जाता है।

उस भाषा का मुख्य रूप 'खड़ी बोली' जैसा है, जिसमें 'ब्रजभाषा' दूसरा स्थान रखती है। फिर 'अवधी-हरियाणी तथा पंजाबी का प्रभाव दिखायी देता है। इसके बाद राजधानी में आने वाली प्राप्य तथा अप्राप्य बोलियों के शब्द मिलते हैं। विदेशी भाषाओं में अरबी-फारसी तथा किसी सीमा तक तुर्की देहलवी हिन्दी की सहायक हैं। जब अमीर खुसरो हिन्दू नारियों की भाषा में कुछ कहते हैं तो उनकी कविताओं में 'ब्रजभाषा' अधिक दिखायी देती है। सम्भव है कि उस समय दिल्ली तथा उसके आस-पास की हिन्दू नारियाँ ब्रजभाषा अथवा उससे मिलती-जुलती अन्य भाषा बोलती रही हों और फारसी से प्रभावित 'खड़ी-बोली' हिन्दू घरों से बाहर बोली जाती रही हो।

खड़ी बोली - अमीर खुसरो का समय उत्तरी हिन्दुस्तान के भाषायी इतिहास में विशेष महत्त्व रखता है। मुसलमानों के आने के बाद दिल्ली दरबार के चारों तरफ विशेषता के साथ तथा दिल्ली नगर तथा उसके आस-पास सामान्यतया एक बड़ी अच्छी भाषा उत्पन्न हो गयी थी, जिसको आज से सत्तर-अस्सी वर्ष पूर्व हिन्दी शोधकर्ताओं ने 'खड़ी बोली' का नाम दिया है। इस बोली के चिन्ह निम्नलिखित हैं।

'अ-ता-का-गा-ना-इस-उस-जिस-किस-पर-में' इत्यादि।

'खड़ी बोली' के पहले कवि अमीर खुसरो हैं। दक्षिणी खड़ी बोली के पहले गद्य-लेखक 'ख्वाजा बन्दानवाज गेसू दराज' हैं और उत्तरी हिन्दुस्तान की खड़ी बोली के पहले उर्दू गद्य-लेखक उस्ताद-इंशा अल्लाह खाँ 'इंशा' हैं।

इसके बाद भी इस भाषा की संरक्षता अधिकतर मुसलमान लेखक करते रहे। 'खड़ी बोली' के जन्म से ही इसकी लिपि फारसी थी। पहले यह अरबी लिपि में लिखी जाती थी। शाहजहाँ के समय से फारसी तथा उर्दू लिपि प्रचलित हुई और यही इस भाषा की लिपि बन गयी। 'खड़ी बोली' कुछ राजनैतिक भेदों के कारण डेढ़ सौ वर्ष पूर्व सबसे पहले नागरी लिपि में लिखी गयी और यहीं से इसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों

का अधिकार प्रारम्भ हुआ, जो दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया।

हमारा सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि हम ऐतिहासिक तथ्यों को न ठीक से देख सकते हैं और न ही ठीक ढंग से सोच सकते हैं। हम यह बात समझने के लिए विवश हैं कि इतिहास का प्राकृतिक झुकाव किसी राजनैतिक अथवा धार्मिक विश्वास से अधिक दृढ़ होता है।

ऐतिहासिक वास्तविकता यह है कि आज से लगभग साढ़े तीन हजार वर्ष पूर्व 'आर्य जाति' की एक शाखा 'वैदिक' भाषा बोलती हुई भारत में आयी और स्थानीय निवासियों में मिल-जुल कर ढाई हजार वर्षों तक चित्ताकर्षक भाषाओं तथा संस्कृतियों को उत्पन्न करती रही। ठीक इसी प्रकार लगभग एक हजार वर्ष पूर्व 'आर्य जाति' की एक दूसरी शाखा फारसी भाषा बोलती हुई भारत आयी और स्थानीय निवासियों के साथ मिल-जुल कर एक आकर्षक भाषा तथा संस्कृति उत्पन्न की। इन दोनों आर्याई शाखाओं को धर्म अथवा राजनीति कुछ भी नाम दें, परन्तु वास्तव में ये दोनों घटनाएँ हमारे राष्ट्रीय जीवन की ऐतिहासिक वास्तविकताएँ हैं, जिनको परिवर्तित करने का प्रयास असफल होगा।

'भाषा' अर्थात् साधारण बोलियों में भी आगे-आगे मुसलमान कवि ही रहे हैं। स्वयं हिन्दू दृष्टिकोण से आध्यात्मिक कविता का प्रारम्भ 'कबीर' ने किया और संत कवियों के लिए मार्ग साफ किया। 'कुतबन तथा जायसी' ने अवधी में वृत्तांत कविता का प्रारम्भ कर हिन्दुस्तान के पद्यात्मक साहित्य में एक महान कार्य किया और तुलसीकृत 'रामायण' का मैदान तैयार किया। यह बात मुसलमानों की महानता के प्रमाण के लिए नहीं लिखी गयी वरन् यह दिखाने के लिए लिखी गयी है कि मुसलमान भी प्रत्येक स्थिति में भारतीय संस्कृति का ही एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

स्वर्गीय बाबाय उर्दू मौलवी अब्दुल हक और उनके सिद्धान्त वाले लोग 'खड़ी बोली' के नाम से चिढ़ते हैं। वे खड़ी बोली का अनुवाद 'अक्खड़ बोली' करते हैं। यह भी एक कमजोर एवं तुच्छ विचार है। इस भाषा को 'खड़ी बोली' कहने वाले कुछ विशेषताओं के कारण इसे 'खड़ी बोली' कहते हैं। अन्यथा वे लोग भी इसी 'खड़ी बोली' को अपनी राष्ट्रीय भाषा स्वीकार करते हैं। सत्य तो यह है कि मौलवी अब्दुल हक साहब तथा उनके गिरोह ने आज के एशिया की सबसे सुन्दर एवं सुप्रसिद्ध भाषा को साम्प्रदायिकता के कीचड़ में लथाड़ दिया।

'खड़ी बोली' मुसलमानों के हिन्दुस्तान आने के बाद एक मिली-जुली भाषा के

रूप में फारसी के प्रभाव से उत्पन्न हुई है, जिसकी भाषा-शैली नागरी लिपि में लिखी होने वाली पड़ी बोलियों से भिन्न है। इस महत्त्वपूर्ण वास्तविकता को एक नये दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया जाता है, जिससे इस बात का अनुमान होगा कि 'खड़ी बोली' में केवल फारसी शब्द ही नहीं आये हैं, वरन् इस बोली की शैली भी फारसी शैली में ढली है।

नागरी लिपि की विशेषता यह है कि इसका प्रत्येक अक्षर वास्तव में 'गतिमान' है और इसमें 'अ' की ध्वनि मिली हुई है। उदाहरण के लिए नागरी 'क' सदैव (क-Ka) तथा 'ख' सदैव (ख-Kha) की ध्वनि देगा। यही स्थिति सभी नागरी अक्षरों की रहेगी। नागरी में लिखे हुए 'राम' को (राम-Raama) 'राग' को (राग-Raaga) 'भय' को (भय-Bhaya) पढ़ा जायेगा।

नागरी अक्षर स्थिर तभी होते हैं, जब या तो वे आधे होकर शब्द में आयें, जैसे 'मार्ग' (मार्ग-Maarga) में, 'र' अथवा फिर जब एक विशेष पहचान हलन्त (्) अक्षर के नीचे लगायी जाय, जैसे 'क्रम्' (क्रम-Kram) में 'म' के नीचे हलन्त का चिह्न लगा है।

नागरी अक्षरों की गतिशीलता की विशेषताओं के कारण इस लिपि में लिखे हुए प्रत्येक शब्द का अन्तिम अक्षर बल्कि शब्द के प्रत्येक भाग का अन्तिम अक्षर गतिमान होगा। उदाहरण के लिए, नागरी में लिखा हुआ 'अमरनाथ' को (अ-म-र-ना-थ-Amara-Naatha) तथा 'तकलीफ' को (त-क-ली-फ-Takaleefa) पढ़ा जायेगा। यह स्पष्ट है कि यह शैली न 'खड़ी बोली' की है और न हो सकती है।

'खड़ी बोली' फारसी शैली में ढली है, जिसमें प्रत्येक शब्द का अन्तिम अक्षर भी स्थित होता है, जैसे, 'हम' (Ham), 'तुम' (Tum), 'खिद-मत' (Khid-mat), 'खावर' (Khaawar), 'तदबीर' (Tadbeer) तथा 'गीत' (Geet) इत्यादि।

फारसी भाषा-शैली में हिन्दी तथा फारसी शब्द सभी स्थिर अन्तिम अक्षरों के साथ बोले जाते हैं और यही शैली खड़ी बोली की है। अधिक जानकारी के लिए निम्नलिखित हिन्दी वाक्य सभ्य खड़ी बोली की शैली में प्रस्तुत है, अनुशीलन कीजिये -

'नाथ-आपकी-जय-जय-कार-रहती-है।'

उपर्युक्त फारसी भाषा-शैली की शिक्षा से वंचित व्यक्ति इस नागरी वाक्य को इस प्रकार पढ़ेगा -

Naatha-Aapa-kee-jaya-jaya-kaara-Rahatee hai.

फारसी शिक्षा से वंचित जिन क्षेत्रों में 'खड़ी बोली' नागरी लिपि का वस्त्र धारण करके पहुँची है, वहाँ इसकी शैली अत्यन्त उपहास-जनक हो गयी है। उदाहरणस्वरूप दक्षिण हिन्दुस्तान के 'तमिल, तेलुगु, मलयालम तथा कन्नड़ी क्षेत्रों में तो 'खड़ी बोली' के शब्दों का अन्तिम अक्षर 'इश्बाअ' का रूप धारण कर लेता है। वहाँ के लोग 'अमरनाथ' को (अमरनाथा-Amara-naatha), 'रामायण' को (रामायना-Rama-yanaa) तथा 'भीम' को (भीमा-Bheemaa) पढ़ेंगे।

अंग्रेजी लेखों में Arjuna-Raavana और Raama में अन्तिम अक्षर की गतिशीलता नागरी ही से परिवर्तित होकर गयी है।

इस समय इस संक्षिप्त बहस का यह अभिप्राय नहीं है कि नागरी लेखों के प्रारम्भिक दोषों को सामने लाया जाय। कहना केवल यह है कि 'खड़ी बोली' फारसी के प्रभाव से उत्पन्न हुई है और इसकी शैली नागरी में उल्लिखित न होने वाली भाषाओं से भिन्न है। 'खड़ी बोली' को राष्ट्रीय भाषा स्वीकार करने के पश्चात् फारसी शैली की शिक्षा भी अत्यावश्यक है जिसका माध्यम केवल 'उर्दू' है और जो दिल्ली तथा लखनऊ में मँजकर किसी हद तक निर्मल हो चुकी है

तुर्की और फारसी बोलने वाले जिन मार्गों से चलकर भारत में आये हैं, उनकी हर मंजिल 'खड़ी बोली' की प्रगति की एक सीढ़ी है। ऐसा विचार है कि 'खड़ी बोली' लाहौर से निर्मल रूप धारण करने लगी थी और दिल्ली आकर एक नियमित भाषा बन. गयी।

इस 'खड़ी बोली' में दिल्ली की राजधानी में आने वाली बीसों बोलियों की धाराएँ 'तत्सम रूप' तथा 'तद्भव' शब्दों के साथ मिल रही थीं। ब्रजभाषी तथा पूर्वी आदि दिल्ली की इस भाषा को बिलकुल 'दोगली' भाषा समझते होंगे, परन्तु नयी-नयी भाषाओं के स्रोत इस नव उत्पन्न भाषा को बहुत बल दे रहे थे और यह भारत की प्रत्येक भाषा से अधिक प्रगति कर रही थी। इस भाषा की प्रगति का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी था कि हिन्दुस्तान उस समय 'दो आबे' (दो नदियों के बीच) का क्षेत्र कहलाता था। हिन्दी का तात्पर्य था 'इण्डिया'।

यह इतिहास की प्राकृतिक देन थी तथा प्रशासन की सहायता के बिना प्रगति कर रही थी। इस भाषा को 'देहलवी बोली' कहा गया। ग्रामों के निवासी इसे 'तुर्कों' की 'बोली' कहते थे। उस समय 'तुर्क' का अर्थ था 'मुसलमान' जैसा कि 'कबीर' ने भी कहा है -

'हिन्दुन की हिन्दुवायी देखी – तुर्कन की तुर्कायी।'

अथवा

एक निर्जन अल्लाह मेरा
हिन्दी व तुर्क दो नहिं तेरा।

इस भाषा को आज से सैकड़ों वर्ष 'जबाने-हिन्दुस्तान' भी कहा गया, अर्थात् इसके लिए इस देश की मिली-जुली भाषा होने का निर्णय शताब्दियों पहले ही हो चुका था। अमीर खुसरो इसी भाषा को 'देहलवी हिन्दवी' कहते थे।

अमीर खुसरो तथा सभ्यता का उल्लेख – अमीर खुसरो को 'अमीर' की पदवी चालीस-पैंतालीस वर्ष की आयु में बादशाह 'जलालुद्दीन खिलजी' के दरबार से मिली परन्तु सत्यता यह है कि वह जन्म से ही 'अमीर' थे। उनका पालन-पोषण सभ्य वातावरण में हुआ था तथा उनकी भाषा दिल्ली की सभ्य भाषा थी। इसके साथ-साथ उनकी आश्चर्यजनक योग्यता का आदर भी आवश्यक है। इन विशेषताओं को समक्ष रखकर अमीर खुसरो की हिन्दी में असाधारण सभ्यता की चर्चा कोई विश्वास से परे बात नहीं किन्तु उनकी हिन्दी के विपक्षी इस सभ्यता की चर्चा कोई विश्वास से परे बात नहीं किन्तु उनकी हिन्दी के विपक्षी इस सभ्यता की चर्चा को अपने प्रतिकूल प्रमाणों का आधार कहते हैं। उनका विचार है कि आज से छः सात सौ वर्ष पूर्व भाषा में इतनी विशुद्धता असंभव है।

संस्कृत, प्राकृत तथा पालि आदि के बाद उत्तरी भारत की जनप्रिय भाषाओं में 'अपभ्रंश' का कुछ नियमित पद्यात्मक साहित्य जैन-भिक्षुओं तथा कुछ अन्य कवियों के दोहों के रूप में मिला है, जिसके कुछ भाग लगभग हजार वर्ष प्राचीन बताये जाते हैं। मेरे विचार में इस साहित्य के शेष रहने का कारण कठोर नियम में जकड़े हुए जैन धार्मिक स्थान तथा जैन मन्दिर हैं। जनसाधारण ने इस कार्य में बिलकुल भाग नहीं लिया।

'अपभ्रंश' के बाद उत्तरी हिन्दुस्तान में 'भाखा' की विभिन्न साधारण बोलियों का समय प्रारम्भ हुआ, जिनके प्राचीन नमूने कुछ टूटे-फूटे लोकगीतों के रूप में कहीं-कहीं मिल जाते हैं अथवा फिर साधुओं की पुरानी बोली के कुछ वाक्य प्राचीन मठों में प्राप्त किये गये हैं। परन्तु यह सभी सामग्रियाँ 'देहलवी हिन्दी' के विषय को कोई सहयोग नहीं दे सकतीं।

कुछ वर्षों पूर्व तक हिन्दी की प्राचीन काव्य-कृति 'पृथ्वीराज रासो' समझी जाती

थी, जो दिल्ली के राजा 'पृथ्वीराज चौहान' के 'जंग नामे' का स्थान रखती थी।

इसके सम्बन्ध में कहा जाता था कि इसे अमीर खुसरो से पचास-साठ वर्ष पूर्व 'पृथ्वीराज' की पराजय के समय उसके दरबारी कवि 'चन्दबरदाई' ने लिखा है।

यह कविता पुस्तक इतना बड़ा छल थी कि इसने साहित्य से लेकर इतिहास तक को प्रभावित किया। वास्तविकता यह है कि इसका दिल्ली की भाषा से कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी 'भाट' ने सोलहवीं अथवा सत्रहवीं शताब्दी में इसकी रचना कर किसी राजपूत राजा को धोखा दिया है। कई स्थानों पर अग्नेयास्त्र का उल्लेख है, जिसका स्वप्न भी 'पृथ्वीराज' के समय में नहीं देखा जा सकता था। उत्तरी भारत में अग्नेयास्त्र सम्भवतः सबसे पहले 'बाबर' के साथ आये हैं।

इसके अतिरिक्त उस कविता में फारसी तथा अरबी शब्द (स्वर्गीय महमूद शीरानी के अनुमान के अनुसार) दस प्रतिशत विद्यमान है। यह स्थिति अकबर तथा जहाँगीर के समय के बाद ही उत्पन्न हो सकती थी, जब मुगल तथा राजपूत सम्बन्धों के साथ अरबी तथा फारसी भी राजपूतों में पहुँच चुकी थी।

अमीर खुसरो की देहलवी हिन्दी पर जिस सामग्री से प्रकाश पड़ सकता है, वह अत्यन्त संक्षिप्त है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सामग्री का हम अवलोकन करते हैं :-

सर्वप्रथम अमीर खुसरो के दादा पीर (अर्थात् ख्वाजा निजामुद्दीन अवलिया रहमतुल्लाह अलैह के गुरु) शेख फरीदुद्दीन गंज शकर, मृत्यु ६६२ हिजरी, शिष्य 'बख्तियार काकी' देहलवी के कुछ हिन्दी वाक्य, उनकी एक आधी फारसी तथा आधी हिन्दी कविता तथा उनकी दो हिन्दी काव्य-पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं :-

(१) शेख ने अपने अल्पायु अनाथ शिष्य 'बुरहानुद्दीन' को अपनी शिष्यता में ले लिया। इस पर 'बुरहानुद्दीन' की माता कहती हैं -

माता : ख्वाजा - बुरहानुद्दीन बाला (बच्चा) है।

शेख : मादरे मोमिन - पूनम का चाँद बाला (ऊँचा) होता है।

इसी प्रकार शेख गंज शकर नेत्राभिष्यंद के कारण आँख पर पट्टी बाँध अपने गुरु 'बख्तियार काकी' को 'वुजू' करा रहे थे। 'बख्तियार काकी' की दृष्टि शेख के चेहरे पर गयी तो कहा -

बख्तियार : बाबा - आँख पर पट्टी क्यों बाँध रखी है?

शेख : आँख आयी है।

बख्तियार : अगर आयी है – ईं रा बस्ता चे आयद। शेख फरीदुद्दीन गंज शकर की एक कविता प्रस्तुत है। अनुशीलन कीजिये –

वक्ते-शहर वक्ते मुनाजात है,
खेज दर आँ बक्त कि बरकात है।
नफ्स मबादा कि बे गोयद तुरा,
खुस्प चे खेजी कि अभी रात है।
बा दमे-खुद हमदम व होशियार बाश,
सुहबते अग्यार बुरी बात है।
बा तने-तन्हा चे रवी जीं जमीं,
नेक अमल कुन कि वही सता है।
पंदे-शकर गंज दिल व जाँ शिनौ,
जाया मकुन उम्र कि हैहात है।

गंज शकर की दो पंक्ति और देखिये –

इश्क (आशिकी) का रमूज न्यारा है,
जुज मदद-पीर की न चारा है।

यह पंक्ति भी देखिये :-

आश केरी (करी) यही सो रीत,
जाऊँ नाय कि जाऊँ मीत।

शेखगंज शकर की मृत्यु के समय अमीर खुसरो १३ वर्ष के थे। इसलिए उपर्युक्त पंक्तियों की भाषा अमीर खुसरो के समय से अच्छे समय की भाषा समझी जायेगी। परन्तु फिर भी गंज शकर तथा अमीर खुसरो की भाषा में कोई विशेष अन्तर नहीं है। जब गंज शकर की भाषा इतनी शुद्ध हो सकती है तो फिर 'तूती-ए-हिन्द' की कविताओं पर सन्देह क्यों?

(२) अमीर खुसरो के समकालीन कवि 'बु अली शाह कलंकर' का निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है –

सजन सकारे जायेंगे, नैन मरेंगे रोय,
विधना ऐसी रैन कर, भोर कभी ना होय।

प्रथम पंक्ति में 'गे' की उपस्थिति से इस दोहे की भाषा पर 'खड़ी बोली' का संदेह होता है। परन्तु घटना यह है कि अधिकतर प्राचीन मुसलमान कवियों की 'भाखा'

में 'खड़ी बोली' की झलक आ जाती है। इसका कारण यह है कि उस समय तक भाषा-व्याकरण के अभाव में मुसलमान 'भाखा' की कविताओं में जगह-जगह अपनी 'खड़ी बोली' खपा देते थे। परन्तु यह स्थिति प्राचीन समय के कवियों तक ही सीमित रही। आगे चलकर तो 'अवधी' ने 'जायसी' तथा 'ब्रज' ने 'खानखानाँ' एवम् 'रसखान' जैसे मुस्लिम कवि पैदा किये। उनकी भाषा का स्तर 'अवधी' तथा 'ब्रज' के किसी कवि से कम नहीं है। किसी भी दशा में उपर्युक्त दोहे को मेरे विचार में 'भाखा' ही कहना उचित होगा।

(३) एक रचना खैरुल-मजालिस अमीर खुसरो के गुरुभाई 'शेख नसीरुद्दीन महमूदुल मारूफ व चराग-ए-देहलवी' (६७५ हिजरी से ७५७ हिजरी तक) के प्रवचन का संकलन है, जिसे चिश्तिया से सम्बन्धित एक पुण्यात्मा कलंदर ने लिखा और मुस्लिम युनिवर्सिटी अलीगढ़ के इतिहास विभाग ने बड़े अच्छे ढंग से प्रोफेसर खलीक अहमद निजामी, प्रवक्ता इतिहास विभाग की अंग्रेजी भूमिका के साथ प्रकाशित किया है। प्रवचनों का वास्तविक अनुलेख फारसी में है। इसमें कुछ हिन्दी वाक्य भी आ गये हैं, जो काफी ध्यानाकर्षक हैं।

'चराग' जन-साधारण की दृष्टि में देहलवी हैं। वह अमीर खुसरो के समकालीन हैं तथा उनके गुरुभाई भी हैं। उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि अमीर खुसरो की भाषा 'बख्तियार काकी' 'गंज शकर' तथा 'बु अली शाह कलंदर' से तो मेल खाती है किन्तु इस प्रकार व्यक्तिगत सामीप्य के उपरान्त अमीर खुसरो तथा 'चराग' की भाषा में पूर्व तथा पश्चिम का अन्तर है। एक सभ्य देहलवी हिन्दी है तो दूसरी अक्खड़ हरियाणी जिसे 'अजानिब बाँगडू बोली' भी कहा गया है। 'खैरुल-मजालिस' के हिन्दी वाक्य देखिये -

अली मौला 'बदायूनी' मौलाना अलाउद्दीन के सामने होनहार, होशियार नवजवान ख्वाजा निजामुद्दीन अवलिया के लिए भविष्यवाणी कर रहे हैं -

अली मौला चू दीद-आगाज कर्द बजबाने हिन्दवी,
'अरे मौलाना वह बड़ा होसी' ऐ मौलाना ईं मर्दे-बुजुर्ग-ख्वाहद शुद।

मौलाना गुफ्त अली अज कुजा मी गोयी -

गुफ्त मन दरू दो चीज मी बीनम्-आनस्त कि दर
हिन्दवी गुफ्तंद 'जो मुंडासा बंदे-सो पायें पसरे'
यानी ऊ कि दस्तारबंदद् - ऊ बर पाय कसे उफ्तद्।'

'खैरुल-मजालिस' में ही अन्यत्र लिखते हैं -

'फरमूदंद दर अहदे मूसा बुत परस्ते बूद-रोजे उरा तप
आमद सर बर पाय बुत नेहाद व गुपत-'तू मेरा गुसायीं -
तू मेरा करतार - मुझे इस तप थें छुडा।'

इन दोनों अनुलेखों में 'तीन' हिन्दी वाक्य आये हैं -

(१) बजबाने अली मौला 'बदायूनी' - 'अरे मौलाना यह बड़ा होसी।'

(२) कहावत - 'जो मुंडासा बंदे - सो पायें पसरे।'

(३) बजबाने बुत परस्ते अहदे मूसा - 'तू मेरा गुसायीं - तू मेरा करतार - मुझे इस तप थें छुडा।'

ये तीनों वाक्य हरियाणी प्रतीत होते हैं। दूसरा वाक्य 'कहावत' है। कहावतें अधिकतर प्राचीन भाषाई रूप में प्रयुक्त होती हैं। शायद यही कारण हो कि भारत में नये आये हुए फारसी तथा तुर्की बोलने वालों की शैली के प्रभाव से उपर्युक्त कहावत में - 'मुंडासा' की 'डाल' 'दाल' फारसी बन गयी तथा बाँधे की 'अलिफ' भी मिश्रित लुप्त हो गयी है। प्रत्येक स्थिति में इस कहावत पर कोई वार्तालाप नहीं हो सकता। हाँ, प्रथम तथा तृतीय वाक्यों में निम्नलिखित शब्द ध्यान देने योग्य हैं -

'बड़ा' अर्थात् 'बड़ा' - 'सी' अर्थात् 'गा' (भविष्य)
'थें' अर्थात् 'से' - 'छुडा' अर्थात् 'छुड़ा'

'डाल' जिस समय पंजाब से पूर्व की ओर बढ़ी तो वह मध्यम अथवा अन्तिम शब्द में 'ड़े' बनने लगी तथा देहली पहुँच कर (कुछ विशेष परिस्थितियों के अतिरिक्त) 'डाल' स्पष्ट रूप से 'ड़े' हो गयी, जैसा अमीर खुसरो ने भी कहा है -

'खड़ा भी लोटा - पड़ा भी लोटा'

अथवा

गंज शकर कहते हैं -

'रीश सबलत से गर बड़े होते'

पूर्व अर्थात् अवधी के क्षेत्रों में पहुँचकर उपर्युक्त 'डाल' स्पष्ट रूप से 'ड़े' बन गयी। दिल्ली तथा पूर्व में 'डाल' शब्दों के मध्य अथवा अंत में निम्नांकित रूपों में आती है -

(क) यदि 'डाल' से पूर्व 'नून' हो। जैसे 'हांडी' - 'मंडी' - मंडी - 'सांड' तथा 'खांड' इत्यादि।

गोस्वामी तुलसीदास की अवधी में 'रामायण' की यह पंक्ति देखिए –

'रुंड पर चुंड मुंड बिन धावें।'

पूर्व वाले अधिकतर 'नूनगुन्ना' के होते भी 'डाल' को 'ड़े' कर देते हैं। उदाहरण के लिए 'भांड' से 'भांड़' – 'छांड' से 'छांड़' – 'डांड' से 'डांड़' – 'सांड' से 'सांड़' तथा 'खांड' से 'खांड़' इत्यादि।

(ख) शब्दों के मध्य 'डाल' के शेष रहने की स्थिति यह है कि 'डाल' दो बार पढ़ी जाय, जैसे 'हड्डी' – 'कबड्डी' तथा 'टिड्डी' इत्यादि।

किसी भी स्थिति में अमीर खुसरो के समय की देहलवी हिन्दी 'ब्रजभाषा' तथा अवधी में 'बडा' तथा 'छुडा' का होना असम्भव है, जिसके प्रमाण के लिए अमीर खुसरो तथा गंज शकर पर्याप्त हैं।

इसी प्रकार 'सी' अर्थात् 'गा' (भविष्य) दक्षिणी, मुलतानी तथा 'बकौले हरियाणी' में है। परन्तु देहलवी हिन्दी में 'गा' आज ही की भाँति प्रयुक्त है। अमीर खुसरो कहते हैं –

'फर्दा जो काल आवेगा'

अथवा

बु अली शाह कलंदर कहते हैं –

'सजन सकारे जायेंगे, नैन मरेंगे रोय।'

देहलवी हिन्दी-ब्रजभाषा तथा अवधी में 'थें' का अर्थ 'से' नहीं है। 'दक्षिणी तथा बकौले हरियाणी' में तो विद्यमान है। परन्तु देहलवी हिन्दी में 'से' प्रचलित था। उदाहरण के लिए अमीर खुसरो का कथन प्रस्तुत है –

'एक थाल मोती-से भरा'

अथवा

गंज शकर के कथनानुसार –

'रीश सबलत से गर बड़े होते'

इस उदाहरण के बाद इस भ्रम की शुद्धि भी कर देना अत्यावश्यक है कि शेख नसीरुद्दीन महमूद 'चराग' देहलवी हैं। वास्तव में उनके गुरु ख्वाजा निजामुद्दीन अवलिया रहमतुल्लाह अलैह उनको 'चराग-ए-देहलवी' कहते थे और इसी कारण वह

'चराग देहलवी' प्रसिद्ध हो गये। किन्तु वास्तविकता यह है कि 'चराग' अवध में पैदा हुए और ४३ वर्ष की आयु तक वह अवध ही में रहे।

इसके बाद उनको गुरु की खोज हुई और वह देहली आकर ख्वाजा निजामुद्दीन अवलिया रहमतुल्लाह अलैह के शिष्य हो गये। उनका निवास देहली में इसी के बाद प्रारम्भ हुआ। इस जानकारी के प्रकाश में 'खैरुल-मजालिस' के उपर्युक्त हिन्दी वाक्यों पर विचार किया जाता है। फारसी अनुलेख के मध्य हिन्दी वाक्य केवल आवश्यकतानुसार अनुकरण किये जाते हैं -

हिन्दी का प्रथम वाक्य - 'अरे मौलाना बड़ा होसी' यदि स्वयम् 'शेख चराग' ने अपनी तरफ से हिन्दी में लिखा है तो इसे उनकी मातृभाषा अवधी अथवा उस समय के मुसलमानों की सभ्य-भाषा-देहलवी हिन्दी में होना चाहिये था। परन्तु यह प्रमाणित है कि यह वाक्य न अवधी का है और न ही देहलवी हिन्दी का।

दूसरी स्थिति यह है कि यह वाक्य 'अली मौला बदायूनी' का प्रवचन हो सकता है। 'बदायूँ ब्रजभाषी क्षेत्र है। इसलिए इसे 'अलीमौला बदायूनी' की मातृभाषा 'ब्रजभाषा' में होना चाहिये था। परन्तु हम देखते हैं कि यह बात भी नहीं है। स्पष्ट है कि न तो ये 'शेख चराग' के शब्द हैं और न 'अली मौला बदायूनी' का प्रवचन। अनुमान यह होता है कि शायद पुस्तक लिखते समय 'शेख चराग' की बुद्धि ने हरियाणी वस्त्र धारण कर लिया है।

हिन्दी का द्वितीय वाक्य - 'जो मुंडासा बन्दे-सो पायें पसरे' यह एक कहावत है, जिस पर बहस की आवश्यकता नहीं है।

हिन्दी का तृतीय वाक्य - तू मेरा गुसायीं - तू मेरा करतार - मुझे इस तप थें छुडा' मूर्ति उपासकों के अनुसार 'हजरत मूसा' के समय के मूर्ति उपासक की जबान से हिन्दी बुलवाना कुछ अद्भुत सा प्रतीत होता है। वास्तव में उस मूर्ति उपासक को 'इब्रानी' (यहूदियों की भाषा) बोलना चाहिये था, अन्यथा उन प्रवचनों की भाषा फारसी हिन्दी की तुलना में 'इब्रानी' से निकट थी।

जहाँ तक उस वाक्य की भाषा का सम्बन्ध है, मैं प्रमाणों द्वारा यह कहने को बाध्य हूँ कि यह वाक्य भी 'चराग' का नहीं है। 'थें' तथा 'छुडा' का अस्तित्व 'अवधी' में नहीं है। इन तीनों वाक्यों की भाषा समान है और यह किसी ऐसे व्यक्ति का लेख है, जो हरियाणा का निवासी है।

पुस्तक के रचयिता 'हमीद कलंदर' इस बात पर आग्रह करते हैं कि यह हिन्दी

वाक्य उसी रूप में प्रवचकों की जबान से कहे गये हैं। 'शेख चराग' की मृत्यु का सन् ७५७ हिजरी है और 'खैरुल-मजलिस' का प्राचीनतम हस्तलेख जो इस समय अवशेष है, १०६० हिजरी का है। सम्भव है तीन सौ वर्ष के इस लम्बे समय में यह अप्रसिद्ध रचना परिवर्तन की गोद में आ गयी हो।

जो भी हो, यह बात तो सत्य है कि न तो ये हिन्दी वाक्य 'शेख चराग' के हैं और न अमीर खुसरो के समय की देहलवी हिन्दी से ही उनका कोई सम्बन्ध है। मैं उन शोधकर्ताओं से सहमत नहीं हूँ, जो अमीर खुसरो के समय की भाषा पर विचार करने के लिए इन छोटे-छोटे वाक्यों को महत्त्वहीन समझते हैं। भाषाओं तथा उनकी सीमाओं पर विचार करने वालों के लिए ये वाक्य मार्ग के छोटे-छोटे 'दीप' हैं, जिनके प्रकाश में बड़ी-बड़ी महत्वपूर्ण वास्तविकताओं तक पहुँचा जा सकता है, यद्यपि ये छोटे-छोटे विषय उससे अधिक होते तो अत्युत्तम होता।

अमीर खुसरो की हिन्दी कविताओं को दृष्टिगत करते हुए मेरा यह विचार है कि स्वयम् अमीर खुसरो की भाषा का उदाहरण उनकी यह काव्य-पंक्ति है -

'कुछ गढ़िये - संवारिये पुकारा।'

अथवा

'फिर कुछ न गढ़ा - न कुछ संवारा।'

अपने स्तर से नीचे उतर कर जनसाधारण से अमीर खुसरो जिस भाषा में वार्तालाप करते होंगे उसका उदाहरण निम्नलिखित ढकोसला है -

खीर पकायी जतन से, चर्खा दिया चला,
कुत्ता आया खा गया, तू बैठी ढोल बजा।

पिंगल के सम्बन्ध से अमीर खुसरो के दोहे उस भाखा में हैं, जो उनकी मातृभाषा तो नहीं है परन्तु उनके चारों तरफ बोली जाती थी। अमीर खुसरो की यह पंक्ति देखिए -

'चल 'खुसरो' घर आपने, रैन भयी चहु देस।'

अमीर खुसरो गीतों में कहीं मुसलमान दुल्हन की भाषा में मल्हार गाते हैं -

'अम्माँ मेरे बाबा को भेजो जी-कि सावन आया।'

कहीं विष्णु भाव के गीतों में वह हिन्दू नारियों की बोली अलापते हैं, जिसको 'भाखा' ही कहा जायेगा। अमीर खुसरो के गीत से आप भी आनन्द लीजिए -

'चुरियाँ फोरूँ-पलंग पर डारूँ।'

पहेलियों में अमीर खुसरो लड़कों तथा लड़कियों की रुचिकर भाषा तक पहुँच जाते हैं। उदाहरण के लिए यह 'भुट्टे' की पहेली देखिए -

आगे-आगे भेना आयी, पीछे-पीछे भैया,
दाँत निकाले बाबा आये, बुर्का ओढ़े मैया।

विषय के अनुसार अमीर खुसरो की पहेलियों की भाषा भी परिवर्तित होती रहती है।

अमीर खुसरो की प्रसिद्ध गजल 'ज हाले मिस्कीं - फारसी तथा 'भाखा' के मिश्रित अलंकारादि में रची गयी है, जो शुद्ध देहलवी हिन्दी नहीं है। पहली ही पंक्ति देखिए जिसमें ठेठ फारसी तथा शुद्ध भाखा वाक्यों का मिश्रण है -

ज हाले मिस्कीं मकुन तगाफुल, दुर आय नैनाँ बनाय बतियाँ,
कि ताबे हिज्राँ नदारम् ऐ दिल न ली हो काहे लगाय छतियाँ।

इसको कुछ लोगों ने 'रेख्ता' का नाम दिया है। परन्तु 'तुहफ-ए-चिश्तिया' (१०५६ हिजरी), लेखक 'मखदूम अलाउद्दीन बरनाई' के अनुसार अमीर खुसरो के समय तक 'रेख्ता' का शब्द केवल संगीतकला के 'भाव एवं उद्देश्य' की विशेषता बताता था, जिसका अभिप्राय था - किसी एक ताल तथा राग में फारसी तथा हिन्दी वाक्यों को उचित स्थान पर रखना।

उत्तरी भारत में अमीर खुसरो के समय के बाद की तीन-चार शताब्दियाँ - उत्तरी भारत से संस्कृत के समाप्त होने के बाद से सरकारी भाषा फारसी यहाँ के साहित्यिक क्षेत्रों पर छा गयी। साधारण भाषाएँ प्रशासन की संरक्षता से वंचित थीं। उस समय की सबसे जानदार भाषा 'देहलवी हिन्दी अथवा खड़ी बोली' थी, जो धीरे-धीरे नगरों की सभ्य संस्कृति पर अपना अधिकार जमा चुकी थी। अमीर खुसरो ने अपने विचारों से इस भाषा को सजाने-सँवारने का पूर्ण प्रयास किया तथा एक महान कार्य का प्रारम्भ कर गये। परन्तु फारसी के सामने इस भाषा को साहित्यिक प्रतिष्ठा न मिल सकी। यह परिस्थिति अमीर खुसरो के बाद से मुहम्मद शाह तक रही।

'खड़ी बोली' का भाग्य उस समय जागा, जब दक्षिण में इस्लामी प्रशासन का अधिकार हुआ। दक्षिणी मुसलमान बादशाह केवल भारतीय स्वभाव के थे। उन्होंने खड़ी बोली को एक साहित्यिक भाषा का स्थान दिया। इस भाषा में स्वयं कविताएँ लिखीं और

साथ ही साथ गद्यात्मक साहित्य की भी रचनाएँ प्रस्तुत कीं तथा उसके साहित्यकारों की हर प्रकार से सहायता की। दक्षिण पहुँच कर खड़ी बोली 'रेख्ता' और दक्षिणी आदि के नाम से प्रसिद्ध हुई।

उत्तरी भारत में देहलवी हिन्दी तो फारसी के बोझ के नीचे दबी रही, परन्तु दूसरी 'भाखा' बोलियों में लोकप्रिय साहित्य उत्पन्न होने लगा। 'भाखा' के उन कवियों में 'कबीर', 'सूर', 'जायसी' तथा 'तुलसीदास' आदि हिन्दुस्तानी इतिहास के अमर महाकवि हैं।

यह सत्य है कि 'खड़ी बोली' उत्तरी भारत में सभ्य से सभ्य होती जा रही थी जबकि अमीर खुसरो के बाद कई सौ वर्षों तक यहाँ 'खड़ी बोली' का कोई उल्लेखनीय कवि नहीं हुआ। फिर भी यहाँ वाले दक्षिणी 'रेख्ता' को अपनी भाषा की तुलना में तुच्छ समझते थे। 'सादुल्लाह–गुलशन' तथा 'वली' जैसे रचयिता कुशल कलाकारों को इन शब्दों में उपदेश देते हैं –

शुमा जबाने दक्किनी रा गुजाश्ता रेख्ता मुवाफिके उर्दू-ए
शाहजहाँबाद मौजूँ बेकुनेद ता मूजिबे शुहरत ब रवाज
व कुबूले-खातिरे साहेब तबूआने आली मिजाज गरदद।

अर्थात् दूसरे शब्दों में 'सादुल्लाह गुलशन' के निकट मौलिक भाषा 'उर्दू-ए-शाहजहाँबाद' थी न कि दक्षिणी 'रेख्ता'।

अमीर खुसरो की सभ्यता एवं संस्कृति के उल्लेख के विरुद्ध प्रमाण देने वालों ने उनकी भाषा की विशुद्धता की तुलना दक्षिण की प्रारम्भिक – 'गंजलक खड़ी बोली' से कर कुछ गलत परिणाम निकाले हैं, जबकि यह स्पष्ट है कि कहाँ अमीर खुसरो की भाषा, कहाँ दक्षिण की 'रेख्ता', जिसके बहुत प्रगतिशील रूप अर्थात् दिल्ली की भाषा को भी 'सादुल्लाह–गुलशन' मौलिक भाषा नहीं स्वीकार करते।

उत्तरी भारत में अमीर खुसरो के बाद हिन्दुस्तानी भाषा के पहले प्रसिद्ध कवि 'कबीर' हैं, जो काशी के जुलाहा थे। अमीर खुसरो की संस्कृति एवं सभ्यता के उल्लेख के विरुद्ध प्रमाण देने के लिए कुछ लोग अमीर खुसरो की भाषा की तुलना 'कबीर की भाषा से कर यह कहते हैं कि 'जब कबीर की भाषा में विशुद्धता नहीं तो उनके बहुत समय पूर्व अमीर खुसरो की भाषा में विशुद्धता कैसे संभव हो सकी।'

कबीर वास्तव में हिन्दुस्तान के एक महान जनप्रिय कवि हैं। अपनी भाषा के लिए

वह कहते हैं 'बोली हमारी पूरबी' अर्थात् 'अवधी'। उनके दोहों आदि में 'खड़ी बोली' जगह-जगह इसलिए आ गयी है कि वह एक मुसलमान घराने से सम्बन्ध रखते थे, किन्तु उनका परिवार मुस्लिम समाज एवं संस्कृति के सबसे तुच्छ स्तर का था। इसलिए उनकी खड़ी बोली भी असभ्य थी। जनप्रिय कविताओं में इस बोली का रंग आनन्द दे जाता था, परन्तु भाषा की दृष्टि से उनकी खड़ी बोली की तुलना अमीर खुसरो की भाषा से करना अनुचित है।

एक पर्यटक एवं अध्यात्मवादी वयोवृद्ध शेखबहाउद्दीन 'बाजन' हुए हैं, जिनकी मृत्यु का समय सन् ६१२ हिजरी बताया जाता है। यह हिन्दी तथा फारसी दोनों में कविता करते थे। उन्होंने अपने एक लेख में नश्वर संसार पर रची हुई अपनी एक कविता की भाषा को देहलवी (देहलवी हिन्दी) बताया है। उस कविता की प्रथम दो पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं। अनुशीलन कीजिए -

यह फित्नी क्या किसे मिलती है,
जब मिलती है, तब छिलती है।

'बाजन' के लेख को दृष्टिगत करके अध्यात्मवादी लोगों ने अत्याचार यह किया है कि उस कविता को देहलवी हिन्दी का प्रथम उदाहरण बता दिया है, जबकि यह स्पष्ट है कि 'बाजन' की मृत्यु से दो सौ वर्ष पूर्व देहलवी हिन्दी में लाखों कविताएँ करने वाला महाकवि अमीर खुसरो स्वयं दिल्ली में उपस्थित था। इस समय देहलवी हिन्दी का प्रथम उदाहरण अमीर खुसरो की कविताएँ हैं।

'बाजन' वास्तव में दक्षिण के निवासी हैं। वह तथा उनके भाई - 'मियाँ मीनाँ' शेख रहमतुल्लाह अलैह गुजराती के शिष्य थे। उनके पिता की समाधि मराठी भाषी नगर 'बुरहानपुर' में है। यह भी सम्भव है कि वह भी वहीं के निवासी हों।

'बाजन' की भाषा दक्षिणी खड़ी बोली है परन्तु प्रतीत यह होता है कि दसवीं शती हिजरी के प्रारम्भिक महीना 'रबीउल-अव्वल' तक इस खड़ी बोली के लिए कोई नाम नहीं रखा गया था। खड़ी बोली दिल्ली से दक्षिण में आयी। इसलिए शायद उस जमाने में इसे देहलवी भाषा भी कहा जाता हो। 'बाजन' ने इन्हीं अर्थों में इसे 'देहलवी भाषा' कहा है। आजकल भी दक्षिणी मुसलमान अपने घरों में जो भाषा बोलते हैं, उसे वह 'उर्दू भाषा' कहते हैं।

उपर्युक्त पंक्तियों में से केवल प्रथम पंक्ति 'यह फित्नी क्या किसे मिलती है' को सामने रखकर एक भाषा का ज्ञान रखने वाला यह निर्णय कर सकता है कि यह

वही 'खड़ी बोली' है, जो अब तक दक्षिणी मुसलमानों के घरों में प्रचलित है। 'फित्नी' (स्त्रीलिंग) उत्तरी भारत की खड़ी बोली के साहित्य में शायद कहीं प्रयोग नहीं हुआ है। किन्तु दक्षिणी मुसलमानों के यहाँ आज भी प्रयुक्त है।

'क्या किसे मिलती है' के वाक्यों में मराठी 'कोनाला-मिलते काय' का अंदाज पूर्णरूप से विद्यमान है। उत्तरी भारत वाले ऐसे अवसर पर 'क्या' के स्थान पर 'कब' कहेंगे। 'कब किसे मिलती है।'

जो भी हो, प्रत्येक स्थिति में 'बाजन' की कविता दक्षिण की है, देहलवी हिन्दी से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

झनझाना, जिला मुजफ्फरनगर (पश्चिमी उ.प्र.) के निवासी एक कवि मुहम्मद अफजल, मुहम्मद शाह के समय से पूर्व तथा अमीर खुसरो से तीन सौ वर्षों के अन्दर हुए हैं। उनकी मृत्यु का समय १०२० हिजरी से पूर्व अथवा १०३५ हिजरी बताया गया है। उनकी रचना 'विकट-कहानी' अथवा 'बारहमासा' खड़ी बोली से मिलती है। झनझाना, जिला मुजफ्फरनगर के सम्बन्ध से उस कविता को 'देहलवी हिन्दी' का नमूना कहा गया है, जबकि वास्तविकता यह है कि मुहम्मद अफजल की यह कविता दक्षिणी भाषा में है।

उस कविता को देखकर यह समझ में नहीं आता था कि उत्तरी भारत के कवि ने दक्षिणी में कविता क्यों लिखी? परन्तु डॉक्टर स्प्रिंगर तथा 'कायम' के कथनानुसार इस पहेली का समाधान हो गया। 'कायम' के संकेत से डॉक्टर स्प्रिंगर ने लिखा है – 'अफझल कुत्बशाह के समय (जो १०२० हिजरी में सिंहासन पर बैठा) से पूर्व गुजरा है। उसकी शिक्षा-दीक्षा साधारण थी। आध्यात्मिक कविताएँ करता था। उसने एक 'विकट कहानी' लिखी है, जिसका हस्तलेख इण्डिया आफिस के पुस्तकालय में सुरक्षित है।'

दक्षिणी भाषा में मुहम्मद अफजल की कविताएँ होने के साथ-साथ उनके समय का निर्धारण एक दक्षिणी बादशाह के सिंहासन के समय से किया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि मुहम्मद अफजल की जन्म-भूमि झनझाना, जिला मुजफ्फरनगर होगी। परन्तु उनका आवास दक्षिण ही था। यदि वह उत्तरी भारत में रहते होते तो उत्तरी भारत का एक उल्लेखकर्त्ता 'कायम' उनका उल्लेख उत्तरी हिन्दुस्तान के बादशाहों के साथ अवश्य करता। उनके बुढ़ाने की प्रेम कथा या तो एक कहानी है अथवा फिर उनका समय एवं स्थान परिवर्तित होगा।

जो भी हो अमीर खुसरो के बाद तीन-चार सौ वर्षों तक उत्तरी भारत में 'खड़ी बोली' साहित्य से वंचित रही। इस भाषा में 'उर्दू' अथवा 'रेख्ता' के नाम से कविता लगभग मुहम्मद शाह के समय से पुनः प्रारम्भ हुई और यहीं से देहलवी हिन्दी का द्वितीय समय प्रारम्भ होता है। 'उर्दू' के उदय होते ही 'फारसी' दबने लगी और उर्दू कविता प्रगति करती हुई 'मीर' - 'अनीस' - 'इकबाल' - 'गालिब' तथा 'दाग' इत्यादि तक पहुँच गयी।

●

खालिक-बारी

अमीर खुसरो की सबसे प्रसिद्ध हिन्दी कविता 'खालिक-बारी' है जिसे पिछले सात सौ वर्षों में हजारों लेखकों ने अपनी लेखनी से सँवारा तथा सजाया और पिछले सौ वर्षों में दर्जनों संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

साधारण दृष्टि से देखने में यह रचना मदरसों की कविता प्रतीत होती है। परन्तु वास्तव में भाषा के इतिहास में इसका बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह हिन्दी की प्रथम कविता है, जो अपने समानार्थक अरबी तथा फारसी शब्दों के साथ छन्दोबद्ध रूप में आज भी हमारे पास विद्यमान है।

अमीर खुसरो के जन्म से तीस-पैतीस वर्ष पूर्व ६१७ हिजरी में 'अबु नस्त्र फराही' ने अरबी शब्दों की शिक्षा के लिए अफगानिस्तान के नगर 'फराह' में विभिन्न प्रकार की कविताओं का एक छन्दोबद्ध पाठ्यक्रम 'निसाबुस्सबियान' के नाम से लिखा था, जो मदरसों में बहुत प्रसिद्ध हुआ। अनुमान यह होता है कि अमीर खुसरो ने अपने शिक्षाकाल में 'निसाबुस्सबियान' पढ़ा होगा और उस 'पाठ्य-पुस्तक की भाषा-शैली के जो चित्र अमीर खुसरो के मस्तिष्क में रह गये, शायद उन्हीं का परिणाम 'खालिक-बारी' की रचना है।

मैं तो समझता हूँ कि 'खालिक-बारी' को अमीर खुसरो ने बहुत ही अल्पायु में लिखा है। मदरसे के शिक्षा-काल में पढ़ी हुई पुस्तक 'निसाबुस्सबियान' की पद्धति का प्रभाव 'खालिक-बारी' में स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। उदाहरण प्रस्तुत है –

सवार दस्त बिरंजन चू पाय रा खलखाल
वशाह अक्द हिमायल रियास व ताज अफसर।

– 'निसाबुस्सबियान'

दस्त बिरंजन कंगन कहिये, पायल है खलखाल,
पाय बिरंजन चूड़ा कहिये, खूबी हुस्न व जमाल।

– 'खालिक-बारी'

अकार कहूवा व राह मुदाम फरतफ मये
कमी दिलावर व फारिस सवार व सैद शिकार।

– 'निसाबुस्सबियान'

बादा शराब व रायक व सह्बा मये अस्त मद
गर जुरआ जाँ खुरी तू कुनी कारे नेक बद।

– 'खालिक-बारी'

'निस्साबुस्सबियान' का यह प्रभाव स्पष्ट है कि अल्पायु में ही अधिक गहरा रहा होगा इसलिए सम्भावना इस बात की है कि अमीर खुसरो ने 'खालिक-बारी' दस-पन्द्रह वर्ष की आयु अर्थात् ६६७ हिजरी में लिखी है। अमीर खुसरो जैसा प्रतिभाशाली पन्द्रह वर्ष की अल्पायु में ही अपनी पुस्तक अवश्य लिख सकता था।

'खालिक-बारी' को एक प्रकार से फारसी की प्रथम कविता भी कहा जा सकता है। ईरान का प्रथम फारसी शब्दकोश-लेखक 'अबुमंसूर अली, आत्मज अहमद असद तूसी' जो शब्द कोश अथवा 'लुगते-फर्से-असद तूसी' के नाम से प्रसिद्ध है। उसी जमाने में लिखा गया है। ईरान के शब्दकोश-ज्ञाता 'आकाय सईद नफीसी' ने अपने एक फारसी निबन्ध 'फरहंग हाय-पारसी' में (जो 'बुरहाने कातेअ चाप' ईरान में सम्मिलित है) 'लुगते-फर्से-असद तूसी' के लिखने का समय प्रमाणों द्वारा ६५८ हिजरी से ६६५ हिजरी तक बताया जाता है। 'खालिक-बारी' के लिखने का भी समय लगभग यही है।

हिन्दुस्तान में फारसी का प्रथम शब्दकोश – 'फरहंगे-नाम-ए-कब्बास' भी शायद उसी समय लिखा गया है। 'कव्वास' का पूरा नाम 'फखरुद्दीन मुबारक शाह कव्वास गजनवी' है। वह अलाउद्दीन खिलजी के दरबार (६९५ हिजरी से ७१५ हिजरी तक) का कवि था। 'कव्वास' का 'फरहंग-नामा' अलाउद्दीन खिलजी के शासन-काल के बीस वर्ष के अन्दर ही लिखा गया है। यह भी सम्भव है कि एकत्र करने का कार्य 'कव्वास' ने उस प्रशासन से पूर्व ही प्रारम्भ कर दिया हो। 'फरहंग-नाम-ए-कव्वास' अब बिलकुल अप्राप्य हो चुका है, केवल उसका संकेत प्राचीन शब्दकोशों में मिलता है।

चूंकि 'ख़ालिक-बारी' हिन्दी भाषा की प्रगति के लिए है, इसलिए इसे हिन्दी शब्दकोश कहना अधिक उचित होगा। 'खालिक-बारी' से फारसी-भाषा को कोई लाभ नहीं हुआ है। परन्तु इस पुस्तक ने हिन्दी की प्रगति में बहुत बड़ा योग दिया है। फारसी शब्दों का भी जो भण्डार 'खालिक-बारी' में है, वह हिन्दी शब्दों की ही भाँति हमारा है और हम आज तक इसे स्वयं ईरान वालों से अधिक सुन्दर ढंग से प्रयोग कर रहे हैं।

अमीर खुसरो तथा हिन्दी भाषा का नव निर्माण – अमीर खुसरो उस समय के कवि हैं, जब हिन्दुस्तान में एक नयी भाषा जन्म ले रही थी। उस भाषा के भविष्य पर अमीर खुसरो को पूर्ण विश्वास था और वह उस नव-साहित्य की बड़े प्रेम से सेवा कर रहे थे। उनकी हिन्दी कविता में एक तरफ चिन्तन एवं माधुर्यगान है तो दूसरी तरफ इसमें भाषा के नव-निर्माण का एक महान आन्दोलन भी चल रहा है। अमीर खुसरो का प्रत्येक अवसर पर यही प्रयास रहा है कि फारसी तथा हिन्दी शब्द पानी तथा दूध की भाँति घुल-मिल जायें ताकि भविष्य की हिन्दी भाषा के लिए प्रगति का मार्ग तैयार हो सके।

अमीर खुसरो की हिन्दी कविताओं में उनकी यह उचित चेष्टा अन्य कविताओं की तुलना में अधिक स्पष्ट है। उनकी पहेलियाँ आदि कविता के आनन्द के साथ-साथ शब्दकोश शिक्षा के पाठ हैं। कहीं-कहीं अपनी फारसी कविता में भी वह अपनी मातृभाषा हिन्दी के शब्द तथा मुहावरे बड़ी विशेषता के साथ लिख देते हैं। उनका अभिप्राय बिलकुल यही है कि इन दोनों भाषाओं को निकट से निकट लाया जाय। देखिए 'दुर-दुर मूये' नारियों का मुहावरा एक फारसी चौपदे में किस विशेषता के साथ लिखते हैं –

रफ्तम् व तमाशाय किनारे जूये,
दीदम् ब लबे आब जने हिन्दूये,
गुफ्तम् सनमा बहाय जुल्फत जे बुवद,
फरियाद बर आवुर्द कि दुर-दुर मूये।

हिन्दी की ही भाँति फारसी में शब्दों की आन्तरिक एवम् बाह्य जाँच-पड़ताल अमीर खुसरो का रुचिकर कार्य था। उन्होंने बीसों 'आश्चर्यजनक शाब्दिक एवम् आर्थिक अलंकारादि अन्वेषण किये हैं। यदि यह देखना हो कि अमीर खुसरो शब्दों से किस प्रकार शतरंज खेलते थे तो उनकी रचना 'दीबाच-ए-गुर्रतुलकमाल' तथा 'एजाज-ए-खुसरबी' पढ़िये। हमारे साहित्य में इतना महत्त्वपूर्ण शब्द-ज्ञाता शायद कोई नहीं हुआ है। अमीर खुसरो अरबी, फारसी, तुर्की तथा संस्कृत के ज्ञाता थे तथा इन भाषाओं के शब्दों पर उन्हें पूर्ण अधिकार प्राप्त था। इसके अतिरिक्त हिन्दुस्तान की कुछ प्रान्तीय भाषाएँ भी वह जानते थे।

खालिक-बारी के सम्बन्ध में परम्पराएँ – 'खालिक-बारी' के सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह बहुत मोटी पुस्तक थी जो अब अप्राप्य है। उपलब्ध 'खालिक-बारी इसी पर आधारित है। इस परम्परा के समर्थन के लिए जिस विषय की आवश्यकता

है, वह मेरे ज्ञान में नहीं है। परन्तु इस परम्परा का कई विश्वसनीय लेखकों ने अनुकरण किया है।

इस सम्बन्ध में एक प्रमाण अवश्य मिलता है कि 'खालिक-बारी' विभिन्न वज्न की कविताओं के पाठों में वितरित है। उनमें से कोई पाठ पन्द्रह-बीस काव्य-पंक्तियों का है और कहीं केवल दो काव्य-पंक्तियाँ ही नजर आती हैं। स्वयम् लेखक यदि उन पाठों का आवंटन करता तो उसकी काव्य-पंक्तियों की संख्या में कोई सम्बन्ध अवश्य होता। यह बात बिलकुल उचित है और इससे यह परिणाम निकलता है कि पाठों का यह आवंटन लेखक द्वारा नहीं किया गया है अथवा पुनः लेखक द्वारा किये गये भाग में समय तथा मदरसों ने काफी काट-छाँट की है।

एक और परम्परा है कि 'खालिक-बारी' उन शरणार्थी तुर्कों तथा ईरानियों को हिन्दी सिखाने के लिए लिखी गयी जो चंगेजी उपद्रवों के कारण अपना वतन छोड़कर भारत आ गये। इस अनुमानित परम्परा के समर्थन के लिए 'मोटी खालिक-बारी' का अस्तित्व प्रमाण के रूप में होना अत्यावश्यक है, जिसकी कोई सम्भावना नहीं दिखायी देती।

'खालिक-बारी' के विषय में साधारण विचारधारा यही है कि यह एक पाठ्य-पुस्तक है, जो भारतीय बच्चों की शिक्षा के लिए लिखी गयी थी। 'खालिक-बारी' का सबसे प्राचीन हस्तलेख भी, जो अमीर खुसरो की मृत्यु के ग्यारह वर्ष बाद ७३६ हिजूरी में सुरक्षित हुआ और जिसकी प्रतिलिपि 'नुस्ख-ए-नदवी' तथा 'नुस्ख-ए-उर्दू-रिसर्च-इंस्टीट्यूट-बम्बई' है, इसी विचारधारा का समर्थन करता है। उस हस्तलेख के लेखक ने पुस्तक की समाप्ति पर कुछ काव्य-पंक्तियाँ लिख दी हैं -

उम्मीद अस्त अज फजूले-हक्के-करीम,
बेख्वानंद व गरदंद तिफ्लाँ-अलीम,
कि सबियाँ बर आयंद अज दामे जह्ल,
शवद फैजे अल्फाजे इशकाल हल।

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि अमीर खुसरो के देहान्त से ग्यारह वर्ष बाद भी यह पुस्तक बच्चों को पढ़ायी जाती थी।

इसके अतिरिक्त लेखक ने कहा है कि -

बतारीखे नेकू सर अंजाम याफ्त
निसाबे-जरीफी निकू नाम याफ्त।

इससे प्रतीत होता है कि 'खालिक-बारी' का नाम 'निसाबे-जरीफी' भी था। यह स्पष्ट है कि पाठ्य पुस्तकें बच्चों के लिए लिखी जाती हैं। यह दूसरी बात है कि उनसे शिक्षा के इच्छुक व्यक्ति अथवा वृद्ध भी लाभ उठा लें।

पूरा अनुमान यही है कि 'खालिक-बारी' बच्चों की पाठ्य पुस्तक है और बच्चों को सम्मुख रखकर लिखी गयी है। इसमें लेखक ने प्रत्येक अवसर पर अबोध बच्चों की मनोभावना का ध्यान रखा है। उदाहरण के लिए -

(१) इस पुस्तक में हास्य रस सबसे अधिक स्पष्ट है और बच्चे हँसी के प्रेमी होते हैं। 'खालिक बारी' की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह हँसी-हँसी में सैकड़ों शब्द बच्चों की स्मरण शक्ति में पहुँचा देती है।

(२) यह पुस्तक कविता में है और बच्चे कविता को गद्य की तुलना में शीघ्र स्मरण कर लेते हैं।

(३) यह पुस्तक मसनवी की भाँति एक छन्द में नहीं लिखी गयी। इसका प्रत्येक पाठ एक नये छन्द में मिलता है। यह नवीनता बच्चों के मस्तिष्क को बोझ नहीं मालूम होती।

खालिक-बारी के समान अन्य रचनाएँ - 'खालिक-बारी' का प्रभाव प्रारम्भिक समय में साहित्यिक क्षेत्रों पर क्या हुआ, यह हमें मालूम नहीं। परन्तु शैक्षिक क्षेत्रों में इस पुस्तक ने एक हलचल पैदा कर दी।

हिन्दुस्तान में हिन्दी-भाषा की शिक्षा का यह प्रथम कदम था, जो उस समय की सरकारी भाषा फारसी को भी साथ लिए हुए था। जो बोली बच्चा घर में बोलता था। उसके शब्द मदरसे में पहली बार उसे पढ़ने को मिले। परिणाम यह हुआ कि इस पुस्तक की ख्याति सीमा पार कर आगे निकल गयी तथा थोड़े ही समय में उसकी प्रतियाँ दिल्ली से निकल कर हिन्दुस्तान के अन्य नगरों में पहुँच गयीं। यहाँ तक कि इस प्रकार की अन्य रचनाओं का भी एक सिलसिला प्रारम्भ हुआ। उन पुस्तकों की एक लम्बी सूची स्वर्गीय महमूद शीरानी ने तैयार की है, जिनमें से कुछ प्रसिद्ध पुस्तकें निम्नलिखित हैं -

(१) 'अल्लाह-खुदायी' (१०६० हिजरी), लेखक, 'तजल्ली'। दिल्ली अथवा दिल्ली के आस-पास लिखी गयी और यह कई बार प्रकाशित हुई।

(२) 'फर्हे-संविधान' (लगभग अल्लाह-खुदायी के समय में) लेखक, शेख इसहाक लाहौरी।

(३) 'समदे-बारी' (महीना रबीउलअव्वल बारहवीं सदी हिजूरी) लेखक, अब्दुल वासेअ। यह पुस्तक भी कई बार प्रकाशित हुई। इसमें शब्द विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत एकत्र हैं, जैसे 'गल्ला, औषधियाँ, तरकारियाँ इत्यादि।

(४) 'निसाबे-मुस्तफा' (१२२६ हिजूरी)। पाठ्य पुस्तकों की परम्परा के विरुद्ध इसमें लगभग आठ सौ काव्य-पंक्तियाँ हैं। यह पुस्तक भी प्रकाशित हो चुकी है।

(५) 'कसीदा-लुगत-ए-हिन्दी' (६५० हिजूरी)। यह एक छोटा-सा 'कसीदा' है, जिसकी विशेषता यह कि इसे एक ईरानी हकीम युसुफी हरवी ने कविता का रूप दिया, जिसने बड़ी कोशिश से हिन्दी सीखी थी। इसके अतिरिक्त 'कादिर-नामा' (मिर्जा गालिब), 'अल्लाह-बारी' (१२०७ हिजूरी) लेखक 'अहसन', 'कादिर-बारी' (१२१० हिजूरी) लेखक 'फैयाज' तथा 'एजिद-बारी', 'अहमद-बारी', 'फैज-बारी' इत्यादि पुस्तकें लिखी गयीं।

कई पाठ्य-पुस्तकें स्वयम् 'खालिक-बारी' के नाम से लिखी गयीं, जैसें 'खालिक-बारी' लेखक 'मुहम्मद अकरम', 'खालिक-बारी' लेखक 'गुलाम अली शाह'।

पंजाबी में भी इस प्रकार की रचनाएँ बराबर लिखी जाती रही हैं, जैसे (१) 'रज्जाके-बारी (१०७१ हिजूरी) लेखक 'इस्माइल'। (२) 'एजिद-बारी' (११०५ हिजूरी लेखक 'कहरतमल' आत्मज सामल दास (३) 'सनअते बारी' (१२२० हिजूरी) लेखक 'गणेशदास कानूनगो तथा 'वासेअ-बारी', 'नासिर-बारी', 'आजम बारी', 'सादिक-बारी' तथा दर्जनों अन्य पुस्तकें लिखी गयीं।

कहते हैं कि गुजराती तथा तिलंगी तक 'खालिक-बारी' का प्रभाव रहा है। यदि यह कहा जाय तो गलत न होगा कि अमीर खुसरो की कोई पुस्तक न 'खालिक-बारी' से अधिक प्रकाशित हुई जौर न इससे अधिक प्रसिद्ध हुई। फिर भी भाषा की प्रगति का जो कार्य इस पुस्तक ने किया है, उसका जवाब मुश्किल से ही कोई अन्य पुस्तक हो सकेगी।

महमूद शीरानी तथा खालिक-बारी – स्वर्गीय महमूद शीरानी ने बड़ी चेष्टा एवम् खोज से एक पुस्तक 'हिफ्जुल्लेसान', 'खालिक-बारी' पर लिखी है, जिसमें यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि प्रसिद्ध हिन्दी कविता 'खालिक-बारी' अमीर खुसरो की रचना नहीं है। मैं शीरानी साहब की आलोचना का प्रशंसक हूँ परन्तु उनकी इस विशेष रचना में प्रमाणित आलोचना से अधिक उनके काल्पनिक दृष्टिकोण के लिए स्पष्टीकरण आ गया है। सौभाग्य से यह स्पष्टीकरण उस समय की माँग से इतना

समीप था कि उन्हें जन-साधारण के अतिरिक्त प्रमुख लोगों के मस्तिष्क ने भी आसानी से स्वीकार कर लिया। मैं शीरानी साहब की इस विशेष रचना को उनके समय की एक भावात्मक आवाज कहूँगा।

'खालिक-बारी' के सम्बन्ध में यह दृष्टिकोण आस्था के रूप में स्वयम् शीरानी साहब तथा उनके वातावरण में पहले ही से विद्यमान था, जिसे अपने ज्ञान की शक्ति से शीरानी साहब ने एक प्रमाणित दृष्टिकोण बनाकर १६२८ ई. में अपनी रचना 'पंजाब में उर्दू' में संक्षेप में प्रस्तुत किया है। शीरानी साहब जैसे शोधकर्ता का झुकाव देखकर 'बाबाय उर्दू मौलाना अब्दुल हक' ने इस दृष्टिकोण की पुष्टि के लिए 'खालिक-बारी' की एक प्रमुख पाण्डुलिपि शीरानी साहब की सेवा में प्रेषित की। यही हस्तलेख शीरानी साहब के दृष्टिकोण का आधार है।

इस हस्तलेख के लिए कहा गया है कि ११८७ ई. में इसके लिखने का कार्य 'सूरत' में हुआ और इसके लिखने वाले सैयद यासीन, आत्मज सैयद 'ताहिर' उर्फ 'खूब' साहब हैं। इस हस्तलेख को एक ऐसे हस्तलेख का अनुकरण बताया गया है, जिसे किसी बाबा इसहाक हलवाई के अनुरोध पर 'जियाउद्दीन खुसरो' ने १०३१ हिज़्री में 'रेख़्ता' के तरीके से अरबी फारसी शब्दों का हिन्दी, ग्वालियरी में अनुवाद कर कविता का रूप दिया। काल्पनिक लेखक ने इस पुस्तक का नाम 'हिफ्जुल्लेसान' रखा है और इसका **माद्दये-तारीख** गद्य रचना में 'तसनीफ़े-आखिर' निकाला है।

यह 'सूरती' हस्तलेख उस पुस्तक का अनुकरण बताया जाता है, जो १०३१ हिज़्री में बाबा इसहाक हलवाई के अनुरोध पर लिखा गया। मैं किसी व्यवसाय का अपमान नहीं करता। परन्तु उस प्राचीन जागीरदार समाज में जो पुस्तक एक हलवाई के अनुरोध पर लिखी जाय, उसकी प्रतिष्ठा गिर जाने में कोई आशंका बाकी नहीं रहती।

यदि काल्पनिक लेखक 'जियाउद्दीन खुसरो' का कोई अस्तित्व स्वीकार कर लिया जाय तो स्पष्ट रूप से वह हलवाई मित्र, मदरसा के मुल्ला होंगे। उनका व्यक्तित्व उनकी पुस्तक के **'माद्दये तारीख'**, 'तसनीफे-आखिर' से स्पष्ट हो जाता है। बेचारे मुल्ला साहब **'माद्दमे तारीख'** के लिए कुछ चरण भी न कह सके। फिर **'तसनीफे-आखिर', 'माद्दये-तारीख'** क्या हुआ।

यह भी हो सकता है कि किसी कस्बे में मुल्ला जियाउद्दीन के पास अमीर खुसरो की 'खालिक-बारी' हो और उन्होंने अपनी मिठाई के लिए वहाँ के बाबा

इसहाक हलवाई को धोखा देकर इसे अपनी रचना बताया हो। फिर भी, इस पुस्तक का लेखक बनने के लिए अपना उपनाम 'खुसरो' रख लिया हो। बाबा इसहाक हलवाई का सम्बन्ध शीरनी तथा मिठाई के अतिरिक्त यदि साहित्य से भी होता तो उस समय के रीति-रिवाज के अनेक पुस्तकों के लेखक 'मुल्ला जियाउद्दीन' उनकी इस विशेषता की तरफ संकेत अवश्य करते। परन्तु मालूम यह होता है कि इस पुस्तक को बाबा इसहाक का 'अनुरोध' कहने वाले लेखक को अपने प्रशंसक के लिए 'बाबा' तथा 'हलवाई' के अतिरिक्त कोई अन्य विशेषता न मिल सकी, जिसका निष्कर्ष यह निकलता है कि बाबा इसहाक केवल 'हलवाई' हैं।

इस्लाम के समय के कुछ व्यवसायी मौलाना तथा कवियों का उदाहरण हिन्दू वर्ण शिक्षा से प्रभावित मुगल जागीरदार समाज के अनुसार कहना उचित होगा।

महमूद शीरानी का दृष्टिकोण – अचरज है कि ऐसे अज्ञात हस्तलेख को अपने दृष्टिकोणों का आधार बनाकर शीरानी साहब ने 'खालिक-बारी' को १०३१ हिजरी की रचना कहा है और इसके लेखक का नाम 'जियाउद्दीन खुसरो' स्वीकार कर लिखा है कि 'नाम में समानता होने के कारण यह पुस्तक अमीर खुसरो के नाम से प्रसिद्ध हो गयी है।'

'खलिक-बारी' के लेखक अमीर खुसरो हैं। इस दृष्टिकोण को सात सौ वर्षों से बराबर स्वीकार किया जा रहा है। फिर 'खालिक-बारी' का 'नुस्ख-ए-नदवी', सम्बन्धित ७३६ हिज़्री, शीरानी साहब के ज्ञान में है और इसे वह प्रमाणित मानते हैं। इसके पश्चात् भी 'खालिक-बारी' को १०३१ हिज़्री की रचना बनाने का प्रयास मेरी समझ में न आ सका।

ऐसा प्रतीत होता है कि 'खालिक-बारी' शीरानी साहब के लिए 'बोझ' है और उनका पूरा प्रयास यह है कि ऐसी अनर्थ हिन्दी पुस्तक का सम्बन्ध अमीर खुसरो रहमतुल्लाह अलैह से बाकी न रहने दें।

खालिक-बारी की परम्पराओं की निरन्तरता – 'खालिक-बारी' की परम्पराओं का सिलसिला हमारे ज्ञान में ७३६ हिजरी के उस 'खालिक-बारी-हस्तलेख' से प्रारम्भ होता है, जो अमीर खुसरो की मृत्यु के ग्यारह वर्ष बाद लिया गया और जिसका पता हमें 'नुस्ख-ए-नदवी' तथा 'नुस्ख-ए-उर्दू-रिसर्च-इंस्टीट्यूट-बम्बई' भी देते हैं। इसके बाद यह परम्परा दो-चार अनुल्लेख्य अनुमानित घटनाओं से गुजरती हुई 'अल्लाह-खुदायी' की रचना के समय तक पहुँचाती है। 'अल्लाह-खुदायी', 'खालिक-बारी' के कुल की

वह प्राचीन पुस्तक है, जो हमारे पास इस समय भी विद्यमान है। 'खालिक-बारी' तथा 'अल्लाह-खुदायी' के बीच ६५० हिजूरी में 'कसीदे' के अन्दाज पर 'हकीम युसुफी' ने 'कसीदा' हिन्दी भाषा में कहा। यह 'कसीदा', 'सर, नजर तथा कमर' के काफियों में 'फायलातुन-फायलातुन-फायलात' के वज्न पर है।

६६० हिजूरी में एक और हिन्दी-फारसी की कवितात्मक पाठ्य पुस्तक 'मकबूल सवियान' के नाम से लिखी गयी, जो अभी तक प्रकाशित नहीं हुई। उसका केवल एक हस्तलेख 'ब्रिटिश म्यूजियम' में है, जिसका विवरण सैयद हाशिम उप-सचिव 'अंजुमन-तरक्की-ए-उर्दू' ने महमूद शीरानी साहब को प्रेषित किया है। वह विवरण 'हिफ्जुल्लेसान' के पृष्ठ ५८ पर उल्लिखित है।

इसहाक साहब की 'फर्हे-सबियान' भी उसी समय लिखी गयी, जब 'अल्लाह-खुदायी' लिखी गयी है।

उपर्युक्त रचनाओं से एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि 'खालिक-बारी' तथा 'अल्लाह-खुदायी' के मध्य-काल में भी इस प्रकार की हिन्दी-फारसी कविताएँ बराबर लिखी जाती रही हैं, जिनमें से अधिकतर अब अप्राप्त हो चुकी हैं। ये रचनाएँ वास्तव में 'खालिक-बारी' के प्रभाव से ही अस्तित्व में आयी हैं।

'अल्लाह-खुदायी' के लेखक 'तजल्ली' १०६० हिज्री में अपनी पुस्तक लिखते हुए प्रथम लेखक 'अमीर खुसरो' की रूह से इस प्रकार सहायता के इच्छुक हैं -

शायद अज लुत्फ व रहमते-बारी,
रूह-ए-खुसरो नुमायदम् यारी।

उपर्युक्त चरणों में शब्द 'खुसरो' प्रयुक्त हुआ है। इसका अभिप्राय शीरानी साहब के 'जियाउद्दीन खुसरो' को न लिया जाय। 'तजल्ली', 'अमीर खुसरो' के साथ उसके गुरु ख्वाजा निजामुद्दीन अवलिया रहमतुल्लाह अलैह से भी सहायता की अपील करते हैं।

बह्-ए-मुर्ग-शुखन नेहादम-दाम,
म-द-दे ख्वास्तम् जरूह-ए-निजाम।

यह बात स्पष्ट है कि इसके बाद 'तजल्ली' का तात्पर्य 'अमीर खुसरो' के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति नहीं हो सकता। इस बात से यह भी प्रमाणित हो जाता है कि १०६० हिजरी में इस विभाग का एक लेखक 'खालिक-बारी' को अमीर खुसरो की रचना समझता है।

यहाँ पर एक बात और ध्यान देने योग्य है। मदरसों की प्रसिद्ध पुस्तक 'खालिक-बारी' शीरानी साहब के कथनानुसार १०३१ हिज़री में 'जियाउद्दीन खुसरो' लिखते हैं। यह स्पष्ट है कि १०६० हिज़री तक पचीस-तीस वर्ष में यह पुस्तक अपने वास्तविक रूप के साथ आँधी-तूफान की तरह फैली होगी, जिससे प्रभावित होकर 'तजल्ली' ने 'अल्लाह-खुदायी' लिखने का निर्णय किया। यह कितनी परिहासपूर्ण बात है कि तीस वर्ष के अन्दर शिष्य अपने गुरु का नाम भूलकर अमीर खुसरो की रूह के पास सहायता माँगने पहुँच गया।

इस अवसर पर शीरानी साहब ने वास्तविकता से हटकर अनुचित मार्ग अपनाने की चेष्टा की है। वह 'अल्लाह-खुदायी' में 'अमीर खुसरो का उल्लेख आने की बात इस प्रकार करते हैं कि 'अल्लाह-खुदायी' का लेखक 'तजल्ली' अध्यात्मवादी लोगों से गहरा विश्वास रखता था। इसीलिए उसने अमीर खुसरो तथा निजामुद्दीन अवलिया रहमतुल्लाह अलैह से सहायता माँगी। इस प्रकार की बात शीरानी साहब जैसे शोधकर्ता के मुँह से उचित नहीं मालूम होती।

'तजल्ली' नक्शबन्दी वंश का शिष्य था और वह 'अल्लाह-खुदायी' में अपनी आस्था का उल्लेख इस प्रकार करता है –

गर मरा नेक ऊफतद या बद,
ख्वाहम अज नक्शबंद ख्वाजा मदद,
दारम् उम्मीदे जुरआ अज जामश,
जाँ कि मुश्किल कुशाय शुद नामश।

नक्शबंद ख्वाजा से सहायता माँगने के बाद आस्था की बात समाप्त हो जाती है और 'तजल्ली' अपने बादशाह शाहजहाँ की प्रशंसा में व्यस्त हो जाता है। अंत में वह इस पुस्तक के प्रथम लेखक अमीर खुसरो की तरफ झुकता है –

शायद अज लुत्फ व रहमते-बारी,
रूह-ए-खुसरो नुमायदम् यारी।

सर्वप्रथम बात तो यह है कि यदि यह माँग धार्मिक विश्वास के कारण होती तो यह चरण बादशाह की प्रशंसा से पूर्व नक्शबंद ख्वाजा के उल्लेख के साथ आया होता।

दूसरी बात यह है कि यदि 'तजल्ली' को 'चिश्तिया' वंश से सहायता माँगनी थी तो पहले उसके सामने हिन्दुस्तान के बेताज बादशाह ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती का नाम आता जिससे सम्पूर्ण भारत सहायता माँगता है। इसके बाद ख्वाज बख्तियार

काकी, ख्वाजा फरीदुद्दीन गंज शकर तथा ख्वाजा निजामुद्दीन अवलिया रहमतुल्लाह अलैह के नाम आते। अमीर खुसरो इन वयोवृद्धों की पंक्ति में बिलकुल नहीं आते। वह शेख (गुरु) नहीं थे। शिष्य अवश्य थे तथा इसी श्रद्धा में उनके चरित्र का सबसे अच्छा पहलू निखर कर सामने आता है। परन्तु वास्तविकता यह है कि धार्मिक विश्वास से परे 'तजल्ली' अपने शिष्य लेखक अमीर खुसरो का उल्लेख कर रहा है और उनकी रूह से सहायता का अभिलाषी है।

ख्वाजा निजामुद्दीन अवलिया रहमतुल्लाह अलैह का उल्लेख केवल इसलिए आया है कि वह अमीर खुसरो के गुरु हैं और अमीर खुसरो की रूह उनके उल्लेख से प्रसन्न हो जायेगी।

तीसरी बात यह है कि स्वयम् 'अल्लाह-खुदायी' का नाम इस बात का प्रमाण है कि वह 'खालिक-बारी' का चित्रण है। इस पुस्तक का नाम 'अल्लाह-खुदायी' स्वयम् 'तजल्ली' ने रखा है -

चूँ ब फज्ले खुदाये गश्त तमाम,
करदम 'अल्लाह-खुदायी' ईं रा नाम।

('अल्लाह-खुदायी', अन्तिम चरण)

'अल्लाह-खुदायी' प्रिय एवं प्रचलित नामों से बिलकुल अलग नाम है और इसे मस्तिष्क केवल उसी समय पैदा कर सकता है, जबकि मस्तिष्क में 'खालिक-बारी' का प्रसिद्ध नाम विद्यमान हो।

'खालिक-बारी' भी साधारण नाम नहीं है। वास्तव में यह नाम 'खालिक-बारी' का प्रथम चरण 'खलिक-बारी सरजन हार' के कारण स्वयम् प्रसिद्ध हो गया। मदरसों की प्रसिद्ध पुस्तकों के नाम का यह रूप बहुत प्रसिद्ध है, जैसे करीमा, मामुकीमाँ। 'अल्लाह-खुदायी' के इन चरणों के लिए - ये नाम पुस्तक के प्रारम्भिक शब्दों से निकाल लिये गये हैं।

शायद अज लुत्फ व रहमते-बारी,
रूह-ए-खुसरो नुमायदम् यारी।

प्रोफेसर मसऊद हसन रिजवी 'अदीब' ने कहा है कि इस काव्यपंक्ति के प्रथम चरण में 'बारी' शब्द 'खालिक-बारी' की तरफ संकेत कर रहा है। प्रोफेसर साहब ने वास्तव में एक बारीक बात की तरफ हमारा ध्यान दिलाया है, जिस पर आज तक

किसी शोधकर्ता की दृष्टि नहीं पहुँच सकी। इस काव्य-पंक्ति के प्रथम चरण में 'बारी' और द्वितीय चरण में 'खुसरो' का आना इस बात का एक और दृढ़ प्रमाण है कि 'तजल्ली' के मस्तिष्क में अमीर खुसरो की रचना 'खालिक-बारी' स्पष्ट रूप से विद्यमान थी। परन्तु शीरानी साहब ने इस प्रमाण को भी निरस्त करने का असफल प्रयास किया है। वह कहते हैं कि यदि 'तजल्ली' के मस्तिष्क में 'खालिक-बारी' का नाम होता तो वह प्रथम चरण इस प्रकार कहता –

'शायद अज लुत्फे खालिके-बारी।'

शीरानी साहब के इस सुझाव पर वास्तव में अचरज होता है। 'खालिक' तथा 'बारी' दोनों एक ही अर्थ के शब्द हैं। इन पर फारसी इजाफत लगाकर 'खालिके-बारी' कहना अनुचित है। ऐसी त्रुटि तो मदरसे का एक साधारण फारसी पढ़ाने वाला शिक्षक भी नहीं करेगा। 'तजल्ली' तो एक कवि था। 'खालिक-बारी' की गलत तथा अनर्थ तरकीब वह कविता के रूप में क्यों कहता। वास्तविकता यह है कि 'अल्लाह-खुदायी' की उपर्युक्त पंक्तियों में 'बारी' तथा 'खुसरो का एक साथ होना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि 'तजल्ली' के मस्तिष्क में 'खुसरो' की 'खालिक-बारी का नाम अवश्य विद्यमान था।'

'खालिक-बारी' की परम्परा पुनः अनुमान के मार्गों से गुजरती हुई उर्दू के प्रथम शोधकर्ता 'खान-आरजू' (मृत्यु ११६५ हिजूरी) तक पहुँचती है और 'गरायबुल्लुगात' में 'खान साहब', 'खालिक-बारी' को अमीर खुसरो की रचना स्वीकार कर उससे प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। स्वयम् शीरानी साहब ने अपनी एक पुस्तक में उन प्रमाणों का अनुसरण किया है।

'खान आरजू' हिन्दी शब्द 'अनबन' के लिए कहते हैं – **'दर हिन्दी अब्र बुलन्दा शुदा रा गोयंद'**। इसके बाद इस शब्द का गलत अर्थ प्रचलित हो जाने का कारण यह बताते हैं कि हजरत अमीर खुसरो ने स्वयम् अपनी पत्रिका में 'अनबन', 'मेग' तथा 'गुफ्ता' शब्दों का प्रयोग किया है। शीरानी साहब कहते हैं कि 'खान आरजू' का संकेत 'खालिक-बारी' की इन पंक्तियों की ओर है –

खंजर व शमूशीर व समूसाम अस्त तेग,
हिन्दवी खांडा-रवावे 'अनमन' मेग।

प्रकाशित 'खालिक-बारी' के हस्तलेखों में 'अनबन' के स्थान पर 'अनमन' मिलता है। परन्तु शीरानी साहब स्वीकार करते हैं कि प्राचीन हस्तलेखों में 'अनबन',

'ऊनबन' अथवा 'अनूं' लिखा है। इससे भी ज्ञात होता है कि 'खान आरजू' के समय में जो हस्तलेख प्रचलित थे, उनमें अब स्थान-स्थान पर परिवर्तन हो गया है।

'गरायबुल्लुगात' में हिन्दी शब्द छुरा के लिए 'खान-आरजू' लिखते हैं - **कारद बुजुर्ग व ताजी सा तौर ख्वानन्द . . . दर रिसाल ए-मंजूम-ए-अमीर खुसरो 'छुरा' बमानी 'उस्तरा' अस्त व मशहूर दर कस्बाते हिन्दुस्तान 'अमी अस्त'।** शीरानी साहब कहते हैं कि 'खान-साहब' का संकेत 'खालिक-बारी' के इन चरणों की तरफ हैं -

जारूब सोहनी कि सबद अस्त टोकरा,
मिक्राज कतरनी कि बुवद उस्तरा छुरा।

'गरायबुल्लुगात' में 'माढ़ी' का अर्थ 'खान आरजू' यह बताते हैं - **'इमारते कि बर कब्रे आतश् परस्ताँ व यहूदाँसाजद . . . लेकिन बमानी बाम हम अस्त, चुनांचे अज रिसाल-ए-अमीर खुसरो अलैहिर्रहमह मालूलमी शवद'।** शीरानी साहब कहते हैं कि 'खान साहब' का अभिप्राय 'खालिक-बारी' के ये चरण हैं -

कस्र-कोशक हिस्न दर ताजी हिसार,
हुजूरा कोठा बाम माड़ी दर द्वार।

यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है कि 'खान-आरजू' ने 'खालिक-बारी' से जितने प्रमाण प्रस्तुत किये हैं, वे सब हिन्दी के शब्द हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि बुद्धिमान एवं विद्वान लोग 'खालिक-बारी' को एक हिन्दी शब्दकोश समझते थे।

प्रत्येक स्थिति में 'खान आरजू' भी 'खालिक-बारी' को केवल अमीर खुसरो की रचना ही नहीं वरन् एक प्रामाणिक पुस्तक समझते थे। 'खान साहब' के बाद आज तक साहित्यिक इतिहास पूर्णरूपेण प्रकाश में है और हम देख रहे हैं कि सभी शोधकर्ताओं ने मिलकर 'खालिक-बारी' को अमीर खुसरो की रचना होने का समर्थन किया है।

बाबाय उर्दू मौलाना अब्दुल हक के दिये हुए एक सन्देहपूर्ण हस्तलेख के कारण, जो बाबा इसहाक हलवाई से सम्बन्धित १०३१ हिजूरी के एक अविश्वस्त हस्तलेख का मूल भी नहीं बल्कि केवल उसका पता देता है, हम सात सौ वर्षों के इतने सुदृढ़ एवं ठोस ऐतिहासिक सम्बन्ध को किसी भी प्रकार से समाप्त नहीं कर सकते।

'खालिक-बारी' का 'नुस्ख-ए-नदवी' ७३६ हिजूरी से सम्बन्धित है। इसका समर्थन 'उर्दू-रिसर्च-इंस्टीट्यूट-बम्बई' के लेख से होता है। १०३१ हिजूरी में

'खालिक-बारी' की रचना होने के दृष्टिकोण को बुद्धि स्वीकार नहीं करती। वह पुस्तक जो ७३६ हिजरी में विद्यमान थी, १०३१ हिजरी में कैसे लिखी जा सकती है। स्वयं शीरानी साहब भी 'नुस्ख-ए-नदवी'को स्वीकार करते हैं।

नुस्ख-ए-नदवी - 'नुस्ख-ए-नदवी' आदरणीय प्रोफेसर नजीब अशरफ साहब की सम्पत्ति है और इस विषय का सबसे महत्वपूर्ण लेख है। खेद है कि 'नदवी' साहब के घर-परिवर्तन के सम्बन्ध में उनकी बहुत सी रचनाएँ इधर-उधर हो गयी और उस समय यह रचना न मिल सकी। इसलिए मैं उस हस्तलेख के सम्बन्ध में केवल वही जानकारी प्रस्तुत करूँगा जो स्वयं शीरानी साहब ने अपनी पुस्तक में लिखी है। शीरानी साहब कहते हैं 'नुस्ख-ए-नदवी' के अन्त में निम्नलिखित अनुलेख उल्लिखित है -

'तम्मत तमाम शुद नुस्ख-ए-निसाबे-जरीफी -
मशहूर बकिताब खालिक-बारी, बतारीख -
हश्तुम् शह्रे रबीउस्सानी, कातिबुलहुरूफ-
मन बन्द-ए-हकीर नवरोज बिन मूबदाँ -
शापूरजी मारूफ बशाइस्तगान।'

शीरानी साहब ने कहा है कि इससे आगे के अनुलेख पर स्याही फिरी हुई है।

मेरा विचार है कि यह पुस्तक चोरी करके बेची गयी है। स्याही फिरे हुए अनुलेख में कोई न कोई चिन्ह ऐसा अवश्य होगा, जिससे चोरी करने वाला पकड़ा जा सकता था। बिना स्याही फिरे हुए उपर्युक्त अनुलेख से निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं -

(१) उस पुस्तक को 'खालिक-बारी' के अतिरिक्त 'निसाबे-जरीफी' भी कहा जाता था।

(२) उस हस्तलेख की लिखाई कार्य आठवीं रबीउस्सानी को समाप्त हुआ। (बिना स्याही फिरे हुए अनुलेख में सन् नहीं लिखा है।)

(३) उस पुस्तक में लिखाई कार्य करने वाला एक 'पारसी नवरोज बिन मूबदाँ शापूरजी' है। जो फारसी अनुलेख ऊपर अनुकरण किया गया है वह 'नुस्ख-ए-नदवी' के पारसी कातिब-नवरोज बिन मूबदाँ शापूरजी का था। परन्तु यह पुस्तक जिस हस्तलेख का अनुकरण वह खालिक बारी का सबसे प्राचीन हस्तलेख है, जिसकी लिखाई का कार्य अमीर खुसरो की मृत्यु के ग्यारह वर्ष बाद ७३६ हिजरी में हुआ।

विचाराधीन पुस्तक किस सन् की है। यह तो पता नहीं चला, परन्तु स्वयं शीरानी

साहब भी इसे काफी पुराना तथा विश्वसनीय लेख स्वीकार करते हैं। उनका विचार है कि इसके लिखने का कार्य 'सूरत' अथवा 'खम्बात' में हुआ है।

'नुस्ख-ए-नदवी' में लिखाई कार्य के सन् का पता न चलने से इस बहम पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। यह हस्तलेख जिस प्राचीन हस्तलेख का अनुकरण है, उसमें सभी विवरण विद्यमान है। ७३६ हिज़्री के हस्तलेख के कातिब ने लेख के अन्त में अपनी एक कविता लिख दी है, जिससे सभी आवश्यक बातें स्पष्ट हो जाती हैं। कातिब की अन्तिम कविता का शीरानी साहब ने भी अनुकरण किया है।

चो बिग्रिफ्त ईं नुस्खा तर्जे-नवी,
ज तसनीफे आँ खुसरदे-पहलवी,
ज इत्मामे आशूरा यक हफ्ता शुद,
कि ईं गौहरे बेबहा सुफ्ता शुद,
उम्मीद अस्त अज फज्ले-हक्के-करीब,
बेख्वानन्द व गरदन्द तिफलाँ अलीम,
बतारीखे नेकू सर अंजाम-याफ्त,
निसाबे-जरीफी निखू नाम-याफ्त,
ज हफ्त सद फुजूँ सी व शश साल बूद,
कि तबाअ अज खेरद दस्ते यारी नमूद,
कि सबियाँ बर आयंद अज दामे जह्ल,
शवद फैजे-अल्फाजे इश्काल. हल।

कातिब की अपूर्ण कविता की उपेक्षा करके हमें केवल उस परिशिष्ट पर विचार करना है। इस पुस्तक को कातिब अपनी रचना नहीं बताता, वह पुस्तक के लेखक को 'आँ खुसरो पहलवी' कहता है, जो उससे पृथक एक अन्य व्यक्ति है।

खुसरो पहलवी 'नुस्ख-ए-नदवी' के पारसी कातिब नवरोज बिन मूबदाँ शापूरजी का लिखा हुआ है। 'उर्दू-रिसर्च-इंस्टीट्यूट-बम्बई' में रजब १२६१ हिज़्री का लिखा हुआ एक और 'खालिक-बारी' का हस्तलेख विद्यमान है, जिसके कातिब 'काजी कासिम अली' हैं और जो किसी नागर ब्राह्मण लड़के की शिक्षा-दीक्षा के लिए नियुक्त हुए। इस हस्तलेख में भी 'नुस्ख-ए-नदवी' में अनुकरण किये हुए परिशिष्ट के चरण विद्यमान हैं परन्तु इसमें 'खुसरो पहलवी' के स्थान पर 'खुसरो देहलवी' उल्लिखित है -

'ज तसनींफे-आँ खुसरदे देहलवी।'

७३६ हिजूरी के हस्तलेख की दो प्रतिलिपियाँ और उनमें समानता इस हस्तलेख को प्रमाणित कर देती हैं। शीरानी साहब के सम्मुख 'उर्दू-रिसर्च-इंस्टीट्यूट-बम्बई' का हस्तलेख नहीं था। उन्होंने कातिब की उपर्युक्त कविता के परिशिष्ट को अमीर खुसरो से सम्बन्धित करने से इंकार किया है और उन चरणों की भाषा पर विरोध व्यक्त किये हैं। मैं स्वयं भी उन चरणों को अमीर खुसरो से सम्बन्धित नहीं कर रहा हूँ। परिशिष्ट के ये चरण ७३६ हिजूरी से एक साधारण शिक्षा प्राप्त कातिब के हैं और उसमें लुप्त-भाषा की अशुद्धियों के उपरान्त उनसे 'खालिक-बारी' के समय के सम्बन्ध में उन चरणों की एक महत्वपूर्ण वास्तविकता स्पष्ट होती है।

शीरानी साहब के दो तर्क - बाबा इसहाक हलवाई से सम्बन्धित 'खालिक-बारी' के हस्तलेख के अयोग्य प्रमाणित हो जाने के बाद शीरानी साहब की बहस के आधार केवल निम्नांकित दो तर्क रह जाते हैं -

प्रथम तर्क - 'खालिक-बारी' में 'दाम' तथा 'दमड़ा', 'सुकुन' के नाम लिखे गये हैं। परन्तु उस 'सुकुन' का प्रचलन 'अकबर' के समय से हुआ, जो अमीर खुसरो के समय से कई सौ वर्ष बाद है। इसलिए 'खालिक-बारी' मुगलों के समय की रचना है।

द्वितीय तर्क - अपनी रचनाओं में अमीर खुसरो ने कुछ शब्द किसी अन्य अर्थ में लिखे हैं तथा वही शब्द 'खालिक-बारी' में किसी दूसरे अर्थ में कविता के रूप में लिखे हैं। इसलिए अमीर खुसरो तथा लेखक 'खालिक-बारी' दो विभिन्न व्यक्तित्व हैं।

पहले प्रथम तर्क पर विचार किया जाता है। 'खालिक-बारी' के निम्नलिखित चरणों में 'दाम' तथा 'दमड़ा' लिखे गये हैं -

दाँग फ्लूस जो आहे पैका जीतल दमड़ा जान,
दाम दाखचा केसा खेसा जान मैकश तान।

शीरानी साहब कहते हैं कि 'दाम', 'दमड़ा' (दमड़ी) 'सुकुन' का रवाज अकबर के समय से प्रारम्भ हुआ। यह सत्य है कि 'दाम' तथा 'दमड़ा' अकबर के समय में प्रचलित थे, परन्तु उनका प्रारम्भ अकबर के समय से हुआ इसका कोई प्रमाण शीरानी साहब ने प्रस्तुत नहीं किया। मुगल-शासन-काल से पूर्व भी रहा है, जैसे 'तुनका' बादशाहों के समय का प्रसिद्ध चाँदी तथा सोने का सिक्का। यह सिक्का मुगल-शासन-काल में भी प्रचलित था, जिसका उल्लेख 'अकबरनामे' तथा

'तज़ुके-जहाँगीरी' इत्यादि में बराबर आया है। 'दीनार' अलाउद्दीन खिलजी का स्वर्ण-सिक्का, जो मुगल-शासन-काल में भी प्रचलित था। मुगल इतिहासों में 'दीनार' का उल्लेख भी बराबर मिलेगा। 'जीतल' यह सिक्का बादशाहों के समय में भी प्रयुक्त था और इसका रवाज मुगल-प्रशासन में भी रहा। 'अबुल फजल' तथा मुगलों के अन्य इतिहासकारों ने भी इस सिक्के का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है। 'गानी', 'जीतल' के समान एक सिक्का था और अलाउद्दीन खिलजी के समय में 'यकगानी', 'दोगानी', 'हश्तगानी' तथा 'द्वाजदहगानी' के हिसाब से प्रचलित था। यह सिक्का मुगल-प्रशासन में भी प्रचलित रहा और इसी का उल्लेख 'तज़ुके-जहाँगीरी' में दिया गया है।

अकबर बादशाह के समय का इतिहास अपने विस्तृत रूप में विद्यमान है कि छोटी से छोटी बात का भी हमें प्रमाण मिल जाता है। मेरी दृष्टि से आज तक किसी इतिहासकार का यह उल्लेख नहीं गुजरा कि 'दाम' तथा 'दमड़ा' (दमड़ी) अकबर के समय से प्रचलित हुए। बल्कि 'दमड़ा' नाम का कोई सिक्का - शायद अकबर के समय में प्रयुक्त नहीं था। हाँ 'दमड़ी' अवश्य प्रचलित थी जो 'दाम' का आठवाँ भाग समझी जाती थी। 'दमड़ी' का रवाज उत्तरी-भारत में पचास वर्ष पूर्व तक रहा परन्तु उस समय 'दमड़ी' नाम का कोई सिक्का नहीं था। 'दमड़ी' का मूल्य - 'आठ कौड़ियाँ' होता था।

भारतीय सिक्कों के कुशल ज्ञाता डॉक्टर परमेश्वरीलाल गुप्त अपने एक अंग्रेजी निबन्ध 'खिलजी सलातीने-देहली के सिक्के' नामक शीर्षक से प्रकाशित (१६५७ ई.) में 'दाम' के लिए लिखते हैं कि 'एक पुरानी किताब 'द्रव्य-परेखा' से पता चलता है कि खिलजियों के समय में 'दाम' विद्यमान था। अब तो हमें मालूम हो चुका है कि 'दाम' शब्द 'द्राम्म' (संभवतः अपभ्रंश) से निकला है। ये दोनों शब्द मुस्लिम आक्रमण से पूर्व लगभग 'दाम' के ही अर्थ के साथ उत्तरी भारत में विद्यमान थे।

स्वर्गीय मौलाना सुलेमान नदवी अपनी पुस्तक 'नुकुशे-सुलेमानी' में लिखते हैं कि 'दाम' वास्तव में प्राचीन शब्द 'दरखम' है, जो यूनानी-व्यापारियों तथा आक्रमणकारियों के साथ अरब, ईरान तथा भारत आया है। अरबी में यह शब्द 'दरहम' बना। फारसी में 'ह' समाप्त होकर 'दरम' रह गया तथा भारत में 'र' गिराकर 'द' की आवाज बढ़ायी गयी और यह शब्द 'दाम' हो गया। यही शब्द अंग्रेजी में 'ड्राम' हो गया।

यह स्पष्ट है कि यूनानी आक्रमण के बाद यह शब्द उत्तरी-भारत में प्रचलित

होगा, जिसका समर्थन गुप्तजी भी अपने निबंध में करते हैं। बल्कि गुप्तजी के अनुसार इस शब्द का उच्चारण 'द्राम्स' अंग्रेजी के 'ड्राम' के प्रारम्भ के ही समान था।

इस बहस से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सिक्का 'दाम' भारत में मुसलमानों के आने से पूर्व भी प्रचलित था और मुगल-प्रशासनकाल में भी प्रचलित रहा। 'दमड़ा' मुगल-काल से पूर्व 'दमड़ा' ही होगा, जो मुगल-प्रशासन-काल में 'दमड़ी' हो गया।

'अमीर खुसरो तथा लेखक 'खालिक-बारी' दो पृथक् व्यक्तित्व हैं।' अपने इस द्वितीय तर्क के सम्बन्ध में शीरानी साहब 'खालिक-बारी' के कुछ चरण प्रस्तुत करते हैं –

फारसी सीमुर्ग व अंका हस्त तदर्व-कब्क हंस,
हम चू यरकानस्त काँवर है जरीर ब नस्ल बंस।

शीरानी साहब कहते हैं कि लेखक 'खालिक-बारी' ने 'तदर्व' तथा 'कब्क' को एक ही पक्षी स्वीकार किया है, किन्तु अमीर खुसरो 'कुरआनुस्सादैन' में इन दोनों पक्षियों को दो अलग-अलग पक्षी स्वीकार करते हैं –

आँ कि परीदे ज परे खुद तदर्ष,
मादा चू पर गुम शुदगाँ जेरे-सर्व,
लाला चू अज कोह बेरफ्त अज शिकोह,
कब्क बे बुरींद दिल जज तेगे-कोह।

'खालिक-बारी' का लेखक योग्य हो अथवा अयोग्य परन्तु 'तदर्व' तथा 'कब्क' को एक पक्षी नहीं समझ सकता। बुद्धि, ज्ञान तथा शब्दकोश को एक तरफ रखिये। ये बातें तो सुनने तथा देखने से बच्चों को भी आ जाती हैं। विचाराधीन चरण 'फारसी सीमुर्ग व अंका हस्त तदर्व-कब्क-हंस' में शब्दों की व्यवस्था, शब्द तथा अनुवाद की पद्धति पर बिलकुल नहीं आधारित है। 'सीमुर्ग'-'अंका'-'तदर्व'-'कबूक' तथा 'हंस' इनमें से किसी पक्षी का एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। मालूम यह होता है कि यह परिवर्तन है, जो 'खालिक-बारी' में बहुत पहले ही हो गया है और जिसके कारण कुछ प्राचीन शब्दकोश-लेखक भी गलती के शिकार हुए हैं।

इसी प्रकार एक और गलत चरण 'खालिक-बारी' में मिलता है, जिसमें 'अंका' को 'सीमुर्ग' तथा 'लक-लक' को 'तितर' बताया गया है –

'अंका सीमुर्ग अस्त व लक-लक तितर।'

यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि न 'अंका', 'सीमुर्ग' है और न 'लक-लक', 'तितर'। यह त्रुटि नहीं परिवर्तन है परन्तु एक अन्य चरण में लेखक 'खालिक-बारी' भी 'तितर' की फारसी 'दुर्राज' बताता है -

'ताऊस मोर बाशद व दुर्राज तितरा।'

+

सौर सुतुर गाव है बलद,
ख्वाही लादो ख्वाही अलद।

शीरानी साहब कहते हैं, यहाँ 'लादो' का अर्थ 'लद्दू' अर्थात् 'बार-बरदार' है। परन्तु अमीर खुसरो 'देवल रानी-खिज्र खाँ' में 'बारबरदार' के लिए जो हिन्दी शब्द लाये हैं, वह लादी है -

सुवुम 'लादी' गिरफ्ता बर सर ईं बार,
कि दर हिन्दीस्त 'लादी' बारबरदार।

शीरानी साहब का विचार उचित नहीं है। वास्तव में 'खालिक-बारी' के चरणों में से दूसरे चरण 'ख्वाही लादो-ख्वाही अलद' का अभिप्राय यह है कि 'चाहो लादो-चाहो न लादो'। यह गलत है कि यहाँ 'लादो', 'लद्दू' के अर्थ में आया है। 'लद्दू' कहेंगे और इस स्थान पर शब्द 'लादो' आया है। अमीर खुसरो की फारसी पंक्तियों में 'लादी' बिलकुल दूसरा शब्द है, जिसका अर्थ 'बोझ उठाने वाले मजदूर' से होता है। 'लादी' का प्रयोग जानवरों पर बिलकुल लागू नहीं होता।

देग हाँडी-कफ्चा डोयी-बेख्ता,
ताबा व गजगाँ-कड़हायी व तवा।

शीरानी साहब कहते हैं कि शब्द 'गजगाँ' शब्दकोश में नहीं मिलता। हाँ, 'काजकाँ', 'कजगाँ' तथा 'गजगाँ' का अर्थ शब्दकोशों में 'ताँबे की बड़ी देग' उल्लिखित है। शीरानी साहब 'खालिक-बारी' के 'गजगाँ' को 'काजकाँ' आदि स्वीकार कर कहते हैं कि इसका अनुवाद 'कढ़हायी' गलत है। उनका विचार है कि लेखक 'खालिक-बारी' के विरुद्ध इस शब्द का अर्थ स्वयम् अमीर खुसरो 'देग' समझते थे। प्रमाण के लिए अमीर खुसरो के निम्नलिखित चरण प्रस्तुत करते हैं -

बले बा ईं हमा जीं ख्वाने खाली शुस्ता ब दस्तम्,
कि हलवाये रजा पुख्ता न बाशद अन्दरीं कजगाँ।

अमीर खुसरो ने 'कजगाँ' का 'गजगाँ' कहा है। परन्तु यहाँ भी यह शब्द 'कढ़ाव' के अर्थ में आया है। 'हलवा' देग में नहीं पकता, 'कढ़ाव' में पकता है। तुर्की में 'कजगाँ' का अर्थ वास्तव में 'देग' है। किन्तु भारत में आकर इस शब्द का रूप भी बदला तथा उसके अर्थ भी परिवर्तित हुए।

किसी भी परिस्थिति में शीरानी साहब अमीर खुसरो का अस्तित्व लेखक 'खालिक-बारी' से पृथक् प्रमाणित करने में विफल रहे। शीरानी साहब के सभी मुख्य तर्क विफल हो चुके हैं। अब 'खालिक-बारी' के लिए केवल उनके कुछ अनुमान शेष हैं, जिन पर अब प्रकाश डाला जायेगा।

शीरानी साहब का एक अद्‌भुत विचार - शीरानी साहब का विचार है कि यदि 'खालिक-बारी' अमीर खुसरो की रचना होती तो पिछली सदियों में उसकी न जाने कितनी प्रतियाँ लिखी जातीं और शब्दकोशों में उसके संकेत होते।

'खालिक-बारी' पर विचार करने से पूर्व शीरानी साहब ने इस वास्तविकता पर दृष्टि नहीं डाली कि अमीर खुसरो की फारसी कविताओं तथा उनके शोध-कार्य के सैकड़ों अलंकारादि की आज तक कोई प्रति नहीं लिखी गयी। अमीर खुसरो की बहुत सी बहुमूल्य गद्यात्मक रचनाएँ अप्राप्त होती जा रही हैं किन्तु उर्दू में उनका कोई उद्धरण भी नहीं है। अमीर खुसरो की हिन्दी कविता तो एक तरफ, उनकी फारसी कविता पर भी अभी तक कोई बहुमूल्य निबन्ध उर्दू में नहीं लिखा गया। बेचारी 'खालिक-बारी' तो एक नये मदरसे की पुस्तक होकर रह गयी है।

अमीर खुसरो के समय में साहित्य को एकत्रित करने का कार्य तो प्रारम्भ हो गया था परन्तु शोध का कार्य प्रतीक्षा कर रहा था। 'खालिक-बारी' उर्दू पुस्तक है। उर्दू में शोध-कार्य का प्रारम्भ 'खान आरजू' (मृत्यु ११६८ हिजरी) से होता है। 'खान आरजू' ने 'गराय-बुल्लुगात' में 'खालिक-बारी' से बराबर प्रमाण प्रस्तुत किये हैं।

'खान आरजू' के बाद से साहित्यिक इतिहास बिलकुल स्पष्ट है और हम देखते हैं कि 'खालिक-बारी' धीरे-धीरे मदरसों से निकल कर साहित्यिक क्षेत्रों में प्रवेश करने लगी थी। शिक्षकों ने इससे प्रमाण-पत्र प्राप्त किये। इसकी कविताएँ कहावत बनीं। डॉक्टर मौलवी नजीर अहमद ने इसकी रचनाओं में परिवर्तन किया इत्यादि। ख्याति की दृष्टि से, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, 'खालिक-बारी' उर्दू की प्रसिद्ध पुस्तकों में से एक है। मालूम नहीं शीरानी साहब इस छोटी-सी रचना से और क्या आशा रखते थे।

फरहंग-ए-मुवैयिदुल फुजला तथा खालिक-बारी - शीरानी साहब का यह विचार भी निराधार है कि 'खालिक-बारी', 'फरहंग-ए-मुवैयिदुल फुजला' से प्रभावित है। 'खालिक-बारी' ७२५ हिजरी अर्थात् अमीर खुसरो की मृत्यु के सन् से बहुत पूर्व लिखी गयी और 'फरहंग-ए-मुवैयिदुल-फुजला' ६२५ हिजरी में लिखी गयी। इन दोनों पुस्तकों में जहाँ भी समानता है, उसका कारण यही हो सकता है कि 'फरहंग-ए-मुवैयिदुल-फुजला' के लेखक 'शेख मुहम्मद लाड देहलवी' ने अमीर खुसरो देहलवी से लाभ उठाया। इसके विरुद्ध विचार गलत है।

शीरानी साहब ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि 'खालिक-बारी' मुख्य रूप से 'फरहंग-ए-मुवैयिदुल-फुजला' तथा साधारणतया उस समय की रचनाओं से ली गयी है। यही कारण है कि जो त्रुटियाँ उन शब्दकोशों में हैं, वही 'खालिक-बारी' में भी विद्यमान हैं। अपने दावे के समर्थन में वह 'खालिक-बारी' में निम्नलिखित चरण प्रस्तुत करते हैं -

(१)

फारसी सीमुर्ग व अंका हस्त तदर्व-कब्क-हंस,
हम चू यरकानस्त कॉँवर है जरीर व नस्ल बंस।

शीरानी साहब कहते हैं कि 'फरहंग-ए-मुवैयिदुल फुजला' में 'तदर्व' का गलत अर्थ 'कबूक' बताया गया है और 'खालिक-बारी' के उपर्युक्त चरणों में भी यही त्रुटि विद्यमान है।

'तदर्व' तथा 'कबूक' की बहस संक्षेप में ऊपर हो चुकी है। लेखक 'मुवैयिदुल फुजला' ने 'तदर्व' का अर्थ 'दुर्राज' बताया है। किन्तु एक प्राचीन शब्दकोश 'अदातुल फुजला' के संकेत से उसका अर्थ 'कबूक' भी अनुकरण किया है। मालूम यह होता है कि 'अदातुल फुजला' के लेखक 'काजी बदरुद्दीन देहलवी' को भी 'खालिक-बारी' के उपर्युक्त चरणों में प्रथम चरण से भ्रम पैदा हुआ है तथा वह अमीर खुसरो के प्रमाणों के कारण 'तदर्व' का अर्थ 'कबूक' लिख गये हैं। ८२२ हिजरी में जब 'अदातुल फुजला' लिखा गया है तब अमीर खुसरो के देहान्त को केवल ६६ वर्ष हुए थे। उनकी कविता बुद्धि तथा ज्ञान के प्रभाव से पूर्ण दिल्ली में विद्यमान थी, जिससे लेखक 'अदातुल-फुजला' भी प्रभावित था। यह आस्था की चरम सीमा थी कि शब्दकोश के लेखक ने अमीर खुसरो के काल्पनिक प्रमाणों के बाद परिवर्तन की सम्भावनाओं पर भी विचार करने की आवश्यकता नहीं समझी थी तथा आँख बन्द कर गलत अर्थ लिख दिये।

इसके अतिरिक्त उस समय शब्दकोश लिखने की प्रथा बहुत ही सीमित थी। बहुत परिश्रम के बाद दो एक अनुचित तथा त्रुटिपूर्ण शब्दकोश लिखे गये थे। ध्यान देने से यह बात बिलकुल स्पष्ट रूप से मालूम हो जाती है कि 'अदातुल फुजला' के समय तक 'तदर्व' को 'कबूक' समझने की बच्चों जैसी गलती होने की संभावना 'खालिक-बारी' के उपर्युक्त चरण के अतिरिक्त किसी अन्य साहित्यिक रचना से उत्पन्न नहीं हो सकती। शब्दकोशों का सिलसिला 'खालिक-बारी' के बाद ही प्रारम्भ हुआ तथा 'अदातूल फुजला' के भ्रम का मूल 'खालिक-बारी' मालूम होता है।

(२)

निया खाल हिन्दी मामूँ जाँ,
और अम्मू कहिये चचा वखाँ।

'निया' के अर्थ कुछ शब्दकोश-लेखकों ने केवल 'नाना' तथा 'दादा' लिखकर छोड़ दिये हैं। परन्तु अधिकतर विश्वसनीय शब्दकोश इस शब्द के अर्थ 'नाना' तथा 'दादा' के अतिरिक्त 'मामूं' तथा 'बड़ा भाई' भी लिखते हैं। यह अर्थ 'फरहंग-ए-मुवैयिदुल फुजला', 'बुरहान कातेअ' तथा 'ग्यासुल्लुगात' में 'बुरहान रशीदी' के संकेत से 'लतायफ', 'कश्फे मदावा' तथा 'जफान' विद्यमान हैं। शीरानी साहब (अपनी पुस्तक 'हिफ्जुल्लेसान' के पृष्ठ ४० पर) 'नाना' तथा 'दादा' के अतिरिक्त सभी दूसरे अर्थों को त्रुटिपूर्ण तथा अविश्वसनीय बताते हैं। शब्दकोश-लेखकों के इतने बड़े बहुमत से शीरानी साहब का निराधार तर्क चिन्तनीय है।

शीरानी साहब का विचार है कि 'खालिक-बारी' के उपर्युक्त चरणों में 'निया' का अर्थ 'मामूं जान', 'फरहंग-ए-मुबैयिदुल फुजला' से गृहीत है। जबकि 'खालिक-बारी' में 'निया खाल' कहा गया है, जिसका अर्थ किसी भी स्थिति में 'मामूं जान' के अतिरिक्त कुछ और नहीं हो सकता। 'खालिक-बारी' के 'मुवैयिदुल फुजला' से लाभ उठाने की बात केवल काल्पनिक है।

(३)

शव चराग-याकूत रतन है हीरा है अल्मास,
और जुमुर्रुद पन्ना कहिये, किस्वत जान लिबास।

शीरानी साहब कहते हैं कि 'शब चराग', 'गाव दरियाई का गौहर' है। इसलिए 'जवाहिर' दरियाई और 'याकूत' कानी है। 'शब चराग' को 'याकूते रतन' का समानार्थक समझना भ्रम है। 'शब चराग' का अर्थ निश्चित करना बहुत कठिन है।

आशंकापूर्ण शब्दकोश-लेखकों ने इसे किसी काल्पनिक 'गाव दरियाई का टार्च लैम्प' और न जाने क्या-क्या लिखा है, जिस पर विश्वास करना मुश्किल है। साहित्य में 'गौहरे शव चराग' तथा 'लाले शब चराग' का प्रयोग बराबर हुआ है। लेखक 'खालिक-बारी' ने शायद 'लाले शब चराग' के सम्बन्ध से 'याकूत' को 'शब चराग' का समानार्थक कहा है।

(४)

हिन्दवी पिलपिल बुदद फिलफिल दराज,
मिर्च फिलफिल गिर्द रा गोयंद बाज।

शीरानी साहब के अनुमान के अनुसार चूंकि 'पिलपिल' का यही अर्थ 'मुवैयिदुल फुजला' में उल्लिखित है इसलिए 'खालिक-बारी' का अर्थ 'मुवैयिदुल फुजला' से गृहीत है, जबकि वास्तविकता इसके विरुद्ध होनी चाहिये। बाद की रचनाओं से पहली रचनाओं में कुछ ग्रहण करने की बात समझ में नहीं आती। होता यह है कि प्रथम रचनाओं में कुछ ग्रहण करने की बात समझ में नहीं आती। होता यह है कि प्रथम रचनाओं से बाद की रचनाओं में कुछ अनुकरण किया जाता है।

(५)

चराग अस्त दीया, फतील अस्त बाती,
बुवद जद्द दादा, नबीरा अस्त नाती।

'नबीरा' का अर्थ शीरानी साहब 'फरजंद जादा' (पोता) कहते हैं और साथ ही साथ 'मुवैयिदुल फुजला' का अर्थ भी प्रस्तुत करते हैं। लिखते हैं कि 'इस मुल्क में 'नबीरा' लड़की के लड़के को कहते हैं।' पुनः कहते हैं कि 'खालिक-बारी' में यह गलत अर्थ 'मुवैयिदुल-फुजला' से आये हैं, जबकि उपर्युक्त पंक्तियों में बताया जा चुका है कि प्रथम रचना में दूसरी रचनाओं से कुछ गृहीत नहीं किया जा सकता।

जहाँ तक 'नबीरा' के अर्थ का सम्बन्ध है, शब्दकोश-लेखकों ने उसके अर्थ 'नवासा' तथा 'पोता' दोनों लिखे हैं। इनमें 'नवासा' साधारणतया प्रचलित है।

उर्दू में और मुख्यतः लखनऊ वालों के निकट 'नबीरा' का अर्थ 'नाती' समझा जाता है, जैसा 'मुवैयिदुल फुजला' ने लिखा है कि 'इस मुल्क में 'नबीरा' लड़की के लड़के को कहते हैं।' आज भी शब्दकोशों के अनुसार 'नबीरा' को 'पोता' कहा जा सकता है। परन्तु मुझे यह भाषा प्रचलित रीति-रिवाज के विरुद्ध प्रतीत होगी। हाँ, मैं इस अर्थ को गलत नहीं कहूँगा।

मौलवी डिप्टी नजीर अहमद साहब ने 'खालिक-बारी' में संशोधन किया है और अपने 'निसाबे-खुसरो' में 'नबीरा' का अर्थ 'नाती' परिवर्तित करके 'पोता' लिखा है। मेरी दृष्टि में मौलवी नजीर अहमद साहब का यह कदम शोचनीय है। ज्ञात रहे कि मौलवी नजीर अहमद साहब 'खालिक-बारी' को अमीर खुसरो की रचना समझते थे और इसे अमीर खुसरो की रचना स्वीकार कर इसमें संशोधन किया है। किसी प्रमाणित हस्तलेख से यदि पुस्तक की शुद्धि की गयी होती तो और बात थी।

'पंजाब में उर्दू' के पृष्ठ १३६ पर शीरानी साहब ने 'फरहंग-ए-मुवैयिदुल फुजला' तथा 'खालिक-बारी' में उल्लिखित हिन्दी शब्दों को आमने-सामने लिखा है और दिखाया है कि 'मुवैयिदुल फुजला' में 'खालिक-बारी' के हिन्दी शब्दों से प्राचीनतम हिन्दी शब्द विद्यमान हैं, इसलिए उनके विचार में 'मुवैयिदुल फुजला', 'खालिक-बारी' से प्राचीन है और खालिक-बारी उस शब्दकोश से गृहीत है।

'मुवैयिदुल फुजला' एक शब्दकोश है और सदैव साहित्यकारों के पास रहा। इसमें परिवर्तन संभव नहीं था। जो कुछ लिखा गया था, वह आज भी विद्यमान है। परन्तु 'खालिक-बारी' सदैव मदरसों की पुस्तक रही है। जब भी समय एवं स्थान के परिवर्तन से शब्दों के रूप तथा उच्चारण में परिवर्तन हुआ तो मदरसे के मौलवियों ने उन परिवर्तित रूपों को अपने मदरसे की 'खालिक-बारी' में प्रविष्ट कर दिया। यही कारण है कि दो सौ वर्ष प्राचीन 'खालिक-बारी' का मूल लेख पचास वर्ष प्राचीन 'खालिक-बारी' से काफी भिन्न होगा अथवा जो हस्तलेख उत्तरी भारत में लिखे हैं, उनका मूल लेख दक्षिणी भारत की पाण्डुलिपियों से अधिकांश विभिन्न होगा।

शीरानी साहब ने 'मुवैयिदुल फुजला' तथा 'खालिक-बारी' के जिन शब्दों को आमने-सामने प्रस्तुत किया है, वह सब परिवर्तित रूपों में भी समान हैं। यह बात स्पष्ट है कि कविता में समान शब्दों को परिवर्तित करने में मौलवी साहब को जितनी कठिनाई हुई होगी, वह वही जानते होंगे। परिवर्तित शब्द प्रस्तुत हैं। अनुशीलन कीजिए -

शब्द-हिरबा

मुवैयिदुल फुजला - अनुवाद-खिरकित (वज्न)

खालिक-बारी - अनुवाद गिरगिट (फेलुन)

शब्द-बूये

मुवैयिदुल फुजला - अनुवाद-गंद (वज्न)

खालिक-बारी - अनुवाद-बास (फाअ)

शब्द-दास

मुवैयिदुल फुजला - अनुवाद-बंसवा (वज्न)

खालिक-बारी - अनुवाद-दाँती (फेलुन)

शब्द-खियार

मुवैयिदुल फुजला - अनुवाद-करवूरी (वज्न)

खालिक-बारी - अनुवाद-कक्ड़ी (फेलुन)

शब्द-जौजबोया

मुवैयिदुल फुजला - अनुवाद-जाहपल (वज्न)

खालिक-बारी - अनुवाद-जायफल (फायलुन)

शब्द-चार मग्ज

मुवैयिदुल फुजला - अनुवाद-अकरोत (वज्न)

खालिक-बारी - अनुवाद-अखरोट (मफ़ूऊल)

शब्द-अंगूजा

मुवैयिदुल फुजला - अनुवाद-हीक (वज्न)

खालिक-बारी - अनुवाद-हींग (फेल)

शब्द-फाजा

मुवैयिदुल फुजला - अनुवाद-जँवाई (वज्न)

खालिक-बारी - अनुवाद-जमाई (फओलुन)

शब्द-डिब्बा

मुवैयिदुल फुजला - अनुवाद-कूपः (वज्न)

खालिक-बारी - अनुवाद-कूपा (फेलून)

शब्द-खिर्स

मुवैयिदुल फुजला - अनुवाद-भाल (वज्न)

खालिक-बारी - अनुवाद-रीछ (फाअ़)

उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त दो-तीन शब्द और हैं -

'दोग' – दोग का अर्थ 'मुवैयिदुल फुजला' ने 'छाछ' तथा 'खालिक-बारी' ने 'मही' लिखा है। यह दोनों शब्द विभिन्न वज्न के हैं। परन्तु 'खालिक-बारी' का 'मही' प्राचीन शब्द मालूम होता है।

'आसमानः' – 'आसमानः' का अर्थ 'मुवैयिदुल फुजला' ने (शीरानी साहब के कथनानुसार) 'छत्ता' लिखा है और 'सक्फ' का अर्थ 'खालिक-बारी' ने 'छत' बताया है। परन्तु 'मुवैयिदुल फुजला', 'नवलकिशोर प्रेस' में 'आसमानः' का अर्थ 'छत' लिखा हुआ है।

'खनूर' का अर्थ 'मुवैयिदुल फुजला', 'कोठी' बताता है तथा 'कुंदू' का अर्थ 'खालिक-बारी' में 'कोठिया' है। 'कोठी' का अभिप्राय आज से साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व 'मुवैयिदुल फुजला' की रचना के समय क्या था यह ज्ञात नहीं।

परन्तु 'खनूर' का अर्थ है – 'जर्फ', मुख्यतः 'जर्फे मतूबख'। 'कुंदू' का अर्थ 'कोठिया' है, जो एक विशेष रूप का गल्ला रखने का 'पात्र' बनाया जाता है। प्राचीन हिन्दी में शायद 'कोठी' तथा 'कोठिया' भिन्न अर्थों के शब्द हों। इन दोनों शब्दों में किसी को प्रधानता देना बहुत कठिन है।

आज की भाषा में 'कोठी' धनवानों के बड़े मकान अथवा गल्ले के बड़े 'बखार' को कहते हैं। 'कोठी' का संक्षिप्त रूप 'कोठिया' तथा 'बखार' का संक्षिप्त रूप 'बखारी' हो सकता है।

खालिक-बारी की त्रुटियाँ – 'खालिक-बारी' लगभग सात सौ वर्षों से मदरसों के मौलवियों एवं विद्यार्थियों के अभ्यास में रही है, जिसका परिणाम यह हुआ कि इस छोटी-सी पुस्तक में बीसों त्रुटियाँ समा गयी हैं। ये त्रुटियाँ निकालने योग्य नहीं हैं। शब्द तथा अर्थ की शुद्धि तो एक ओर, कुछ चरणों को वज्न की दृष्टि से शुद्ध पढ़ना भी कठिन हो जाता है। मुझे आज तक शीरानी साहब की रचना में सम्मिलित 'खालिक-बारी' का कोई शुद्ध लेख न मिल सका।

'खालिक-बारी' की जिन त्रुटियों को शीरानी साहब ने उछाला है, उनकी संख्या में और वृद्धि हो सकती है। परन्तु इसके बाद भी मैं इस पुस्तक को अमीर खुसरो की रचना कहूँगा।

मैं उन कठिनाइयों को आँख से ओझल नहीं कर सकता, जो मदरसों में पुस्तकों पर आयी हैं। विशेष कर, जब जीवन के विभिन्न भागों के प्रिय तथा अप्रिय शब्दों को

दो सौ चरणों में खपाने की चेष्टा की गयी हो और वह भी उस समय में जब शब्दकोश बिलकुल नहीं मिलते थे।

एक प्रश्न और उत्पन्न होता है कि 'खालिक-बारी' के अतिरिक्त और बहुत सी पुस्तकें मदरसों में सैकड़ों वर्षों से प्रचलित हैं। उनमें इतनी त्रुटियाँ क्यों नहीं आयी हैं। इसका उत्तर यह है कि अन्य मदरसों की पुस्तकें फारसी तथा अरबी में होती थीं और विदेशी भाषा की दृष्टि से एक मुख्य साहित्यिक स्तर के साथ वे देश के प्रत्येक भाग के शिक्षित लोगों में प्रचलित थीं। परन्तु 'खालिक-बारी' एक ऐसी भाषा का शब्दकोश था, जो उस समय तक साहित्यिक स्तर पर नहीं पहुँच सका था। समय तथा स्थान के साथ-साथ शब्दों की ध्वनि तथा अर्थ भी परिवर्तित हो जाते थे।

यह स्पष्ट है कि 'खालिक-बारी' दिल्ली तथा पंजाब से लेकर दक्षिण तक और अमीर खुसरो के समय से लेकर आज तक मदरसों में प्रचलित रही है। उस समय मदरसों के मौलवियों को भाषा में जो कठिनाई उत्पन्न हुई, उसमें वे बराबर परिवर्तन एवं संशोधन करते रहे।

शीरानी साहब की अनुचित आपत्ति – शीरानी साहब ने 'खालिक-बारी' पर जो आपत्तियाँ की हैं, उनमें से कुछ यथोचित भी हैं। परन्तु अमीर खुसरो की रचना में परिवर्तन एवं संशोधन को मैं पहले ही स्वीकार कर चुका हूँ, जिनके बाद उन आपत्तियों का सम्बन्ध अमीर खुसरो से शेष नहीं रहता।

यह कहना बिलकुल गलत है कि 'खालिक-बारी' में चूँकि त्रुटियाँ हैं, इसलिए यह अमीर खुसरो की रचना नहीं हो सकती। परिवर्तन एवम् संशोधन किसी रचना का सम्बन्ध उसके लेखक से नहीं तोड़ सकते। कबीर-तुलसी-सूर-गालिब-इकबाल-मीर-फिरदौसी-रूमी तथा अनीस इत्यादि सब ही की रचनाओं में परिवर्तन एवम् संशोधन हुए हैं। यह सम्भव है कि कहीं कम तथा कहीं अत्यधिक। परन्तु इसका तात्पर्य यह तो नहीं हुआ कि उन महाकवियों की रचनाएँ अब उनकी नहीं रहीं।

'कबीर के यहाँ तो परिवर्तन एवम् संशोधन चरम सीमा तक पहुँच गये हैं। परन्तु उनकी कविता आज भी हिन्दी साहित्य का सुन्दरतम 'उपहार' है। अब शीरानी साहब की आपत्तियों पर साधारण दृष्टि डाली जाती है। आप भी अनुशीलन कीजिए –

(१)

दस्त बिरंजन कंगन कहिये, पायल है खलखाल,
पाय बिरंजन चूड़ा कहिये खूबी-ए-हुस्न व जमाल।

आपत्ति है कि 'चूड़ियाँ' केवल हाथ की होती है, पैर की नहीं होतीं। यह आवश्यक नहीं है। हाथ की भाँति पैर की भी 'चूड़ियाँ' होती हैं।

(२)

किर्मे शब ताब अस्त कीड़ा चमकना,
नीज गोयंद आतशक् ऊरा बेदाँ।

आपत्ति है कि 'चमकना' बसुकून 'मीम' गलत है। 'मीम' पर गतिशीलता तथा 'काफ' स्थिर मसूदर में आयेगा। परन्तु 'किर्मे शब ताब' का अर्थ देने के लिए 'मीम' को स्थिर तथा 'काफ' को गतिशील होना चाहिये, जिसके अर्थ होंगे 'चमकने वाला' अर्थात् 'जुगनू'। इस प्रकार की संज्ञाएँ हिन्दी में कम हैं किन्तु हैं, जैसे - धौंकनी-कतरनी-पटखनी-मरखन्ना-कट-खन्ना-झुंझुना तथा मुनमुना इत्यादि।

(३)

गंदुम गेहूँ, नखुद चना, शाली है धान,
हबूरत जोनरी, अदस् मसूरी वर्ग है पान।

'हबूरत' के गलत शब्द पर आपत्ति है। शब्दकोश में यह शब्द वास्तव में 'जरत' अथवा 'जर्रत' आया है। यह पुस्तक लिखने वाले की त्रुटि है, जिसका कारण हिन्दी भाषा शैली है। लेखक पर आपत्ति क्यों?

(४)

चर्खा रहँटा गल्ला रा पागीला दाँ,
राँड बेवा जाल रा बूढ़ी बेख्वाँ।

'पागीला' शब्द शीरानी साहब को शब्दकोश में नहीं मिला। अमीर खुसरो के समय का एक हिन्दी शब्द आज यदि समाप्त हो गया तो इस पर आपत्ति क्यों उत्पन्न होगी?

(५)

शबूगीर व लैल व शब तू बेदाँ रात रैन निस,
कानीज व कंद शकर व गुड़ जान जहर बिस।

आपत्ति है कि 'शबूगीर' को 'रात' कहना गलत है। 'शबूगीर' तथा 'वक्ते सहर' भी रात का उसी तरह भाग है जिस प्रकार 'इश्राक-व अस्र' दिन का भाग है। यदि 'अस्र' को दिन कहा जा सकता है तो 'शबगीर' को रात भी कहा जा सकता है।

(६)

हिरन आहू जानिये आहू बच्चा कहिये गजाल,
बूजना बन्दर, खिर्स रीछ, आमदा गीदड़ शगाल।

शीरानी साहब की आपत्ति है कि हिरन बसुकूने 'रा' गलत है। वार्तालाप सात सौ वर्ष प्राचीन भाषा पर हो रहा है। 'हिरन' एक हिन्दी शब्द है और यह निर्णय कैसे हो कि यह अमीर खुसरो के समय में किस प्रकार बोला जाता था।

(७)

समंदर है आग में जीव कीड़ाँ,
चू बोद अस्त दूर व चू नजदीक नीड़ा।

आपत्ति है कि 'बोद' का अर्थ 'दूर' नहीं 'दूरी' है। 'दूर' के बाद 'व' मदरसे के मुल्लाओं ने जबरदस्ती ठूंस दिया है। इस चरण को इस प्रकार पढ़िये -

'चू बोद अस्त दूरी चू नजदीक नीड़ा'

(८)

सीरा घाना, कोर काना, भेद राज,
गुर्सेना भूका प्यासा तश्नाबाज।

'कोर' का अनुवाद 'काना' करने पर शीरानी साहब आपत्ति व्यक्त करते हैं। आज की भाषा में शायद कोई 'कोर' का अनुवाद 'काना' नहीं करेगा। परन्तु अमीर खुसरो के समय में 'काने' को भी 'कोर' कहते थे। हकीम युसुफी हरबी (बाबर के समकालीन) अपने 'लुगाते-हिन्द' के कसीदे में 'कोर' का अनुवाद 'काना' ही करते हैं -

'जीव व कन आमद जवाँ व गोश व दारी रीश दाँ,'
(जीभ) (कान) (दाढ़ी)
'मोच रा मी ख्वाँ बुरूत व काना कोर व ढहरा कर।'
(मोंछ)

(६)

हिरबा गिरगिट कजदुम् बिच्छू रासू न्योल,
सग है कुत्ता माही मछली लुकूमा कोल।

मौलाना अमीन चिरैयाकोटी के प्रमाण से शीरानी साहब को 'कोल' में सुकून 'वाव' पर 'आपत्ति' है, अर्थात् उनके विचार में इस शब्द को 'कवल' कहना चाहिये। 'कोल' एक साधारण शब्द है। इस प्रकार के शब्दों के बहुत से रूप चरणों के समय एवम् स्थान की भाषा-शैलियों के कारण उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे - कवर-कवल-कउरा-कौरा तथा कौर ब्रज तथा अवधी में प्रचलित हैं। इनमें से 'कवर' तथा 'कौर' का रिवाज अधिक है। मुसलमानी ब्रज तथा अवधी में 'कौर' से 'कौल' का रिवाज अधिक है। मुसलमानी ब्रज तथा अवधी में 'कौर' से 'कौल' का रूप धारण कर लिया है और यही रूप अमीर खुसरो के उपर्युक्त चरण में मिलता है। ब्रज तथा अवधी में मुसलमान एवम् हिन्दू पड़ोसियों की भाषा-शैलियों में भी बहुत से शब्दों में 'र' तथा 'ल' का अन्तर मिलता है।

जर बुवद सोना-सीम जीतल नुक्रा रूपा,
आना कपड़ा-टाट टप्पर-डिब्बा कूपा।

आपत्ति है कि 'सोना' का 'ना' तक्तीअ से गिरता है। स्वयम् शीरानी साहब की 'खालिक-बारी' में यह चरण इस प्रकार लिखा है -

जर बुवद सोन्ना व सीम व नुकरा रूप,
जामा कप्पड़-टाट टप्पर, डिब कूप।

यह चरण 'खालिक-बारी' के पाँचवें भाग का है, जिसका बज्न है - 'फायलातुन-फायलातुन-फायलात'। मालूम नहीं शीरानी साहब ने 'ना' तक्तीअ से किस प्रकार गिरा दिया।

शीरानी साहब की सभी आलोचनाओं का उत्तर देने के बाद एक प्रश्न अब भी अवशेष रह जाता है, अर्थात् 'खालिक-बारी' में त्रुटियाँ क्यों हैं? यह प्रश्न शीरानी साहब की रचना से पूर्व भी था - और आज भी शेष है। शीरानी साहब की भाँति 'जी' मेरा भी यही चाहता है कि अमीर खुसरो की रचनाओं में त्रुटियाँ न होती तो अच्छा होता। परन्तु इसके लिए मैं सात सौ वर्षों के स्वीकार किये हुए तर्कों को दबाने के लिए तत्पर नहीं हूँ। उन त्रुटियों के कारण, जहाँ तक मेरी समझ में आये, मैंने काफी विस्तार के साथ आपके सम्मुख प्रस्तुत कर दिये हैं।

निष्कर्ष - इस बहस को समाप्त करते हुए मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि शीरानी साहब एक योग्य एवं बुद्धिमान अनुसंधाता थे। 'खालिक-बारी' के सम्बन्ध में मैं उनके दृष्टिकोणों से सहमत नहीं हूँ परन्तु शीरानी साहब के प्रगाढ़ अध्ययन एवं

ज्ञान को अस्वीकार करना असम्भव है। मौलाना अमीन चिरैयाकोटी ने 'खालिक-बारी' की आलंकारिक शैली के जो कसीदे पढ़े हैं, वे मौलाना साहब की केवल श्रद्धा के द्योतक हैं। 'खालिक-बारी' की विशेषता तो केवल यह है कि वह अपने ढंग की प्रथम पुस्तक है। उस समय हिन्दी-फारसी का कोई शब्दकोश नहीं लिखा गया था।

इन परिस्थितियों में अत्यन्त संक्षिप्त परन्तु कवितात्मक शब्दकोश लिखकर अमीर खुसरो ने शब्दकोश-लेखन का नेतृत्व किया है।

प्रथम प्रयास में कमी रह जाना स्वाभाविक है और 'खालिक-बारी' इससे मुक्त नहीं है। यह भी सत्य है कि उसमें काफी चरण जोड़े गये हैं, जिन्हें मुल्लाओं ने जोड़ दिया है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि परिवर्तन एवम् संशोधनों के उपरान्त भी उस कविता का ढाँचा तथा उसका अधिकतर भाग अब भी अमीर खुसरो का है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि 'खालिक-बारी' का लेखक त्रुटियों से अछूता है, जो उस पुस्तक में दृष्टिगोचर होती हैं, जबकि मेरे अनुमान के अनुसार यह पुस्तक अमीर खुसरो की अल्पायु की रचना है।

●

परिशिष्ट

पुस्तक में प्रयुक्त कुछ उर्दू शब्दों के अर्थ

मदरसा	=	वह पाठशाला जहाँ अरबी तथा फारसी की शिक्षा दी जाती है।
शेर	=	दो चरणों को एक 'शेर' कहते हैं।
वुज़ू	=	नमाज पढ़ने से पूर्व हाथ, मुँह, पैर तथा नाक आदि धोना।
नात	=	हजरत मुहम्मद साहब की छन्दोबद्ध स्तुति।
किताबत्	=	लीथो प्रेस पर छापने के लिए लिखाई का कार्य।
कब्क	=	चकोर
तदर्व	=	चकोर की भाँति का एक पक्षी
बिस	=	विष
न्योल	=	नेवला
नवासा	=	नाती
फरजन्द जादा	=	पोता, पौत्र
जर्फ	=	पात्र, बरतन
जर्फे मतबख	=	पाकशाला-पात्र
कान	=	खान, निधि, भण्डार
कानी	=	खानी
तरकीब	=	विभिन्न वस्तुओं को मिलाकर कोई विशेष वस्तु बनाने का ढंग, युक्ति।
कातिब	=	लीथो प्रेस पर छापने के लिए एक विशेष कागज पर विशेष स्याही से लिखने का कार्य करने वाला।
तक्तीअ	=	छन्द, वज्न, पद्य के किसी चरण के अक्षरों को गणों की मात्राओं की तुलना में रखकर यह देखना कि अमुक पद शुद्ध है अथवा नहीं।

गौहर = मुक्तक, मोती

गाव = गाय, बैल

गाव दरियाई = दरिया में रहने वाली गाय।

सुकून = अक्षर का हल होना, शान्ति।

वारबरदार = भारवाहक, बोझ उठाने वाला।

बारबर = फारसी में बोझ ले जाने वाला तथा अंग्रेजी में बाल बनाने वाला।

इजाफत = फारसी शब्दों के नीचे जेर की मात्रा, सम्बन्ध।

सदी = शताब्दी शती

काफिया = अनुप्रास, तुक

रदीफ = गजल में काफिये के बाद आने वाला शब्द।

मस्दर = उद्गम, वह शब्द जिसमें क्रियाएँ तथा कर्ता, धातु–कर्म आदि बनते हैं।

सह्ले मुम्तनाअ = ऐसे शेर जो देखने में सरल प्रतीत हों परन्तु वैसा कहना कठिन हो।

कसीदा = उर्दू पद्य की एक किस्म जिसमें किसी महान व्यक्ति की प्रशंसा की जाती है, ऐसी प्रशंसा जिसमें यथार्थता कम हो। पहले कवि लोग नवाबों, राजाओं तथा बादशाहों की प्रशंसा कविता में करते थे और उस कविता का नाम 'कसीदा' रखा गया।

इश्बाअ = 'जबर' - 'जेर' तथा 'पेश' को इतना खींचकर पढ़ना कि 'अलिफ' - 'ये' तथा 'वाव' पैदा हो जायें। जैसे - 'खर' में 'खे' के जबर को बढ़ा दें तो 'खार' हो जायेगा। 'उत्पादन' से 'ऊफतादन' इत्यादि।

मस्नवी = उर्दू पद्य की एक किस्म जिसमें कोई कहानी अथवा उपदेश एक ही वृत्त में होता है और उसका प्रत्येक शेर दूसरे शेर से काफिए - रदीफ में नहीं मिलता तथा प्रत्येक शेर के दोनों चरण सानुप्रास होते हैं।

अब्जद = अरबी अक्षरों का वह क्रम जिसमें प्रत्येक अक्षर का मूल्य एक

नम्बर से लेकर एक हजार नम्बर तक होता है और इन्हीं अक्षरों के नम्बरों द्वारा जन्म-मृत्यु का सन् निकाला जाता है। जैसे 'अब्जद' - 'अलिफ' = १, 'बे' = २ 'जीम' = ३ तथा 'दाल' = ४ होता है। इसी प्रकार अन्य अरबी अक्षरों का भी नम्बर निर्धारित है। इन्हीं नम्बरों द्वारा जो सन् निकाला जाता है उसका नाम 'माद्दये-तारीख' है। 'तसूनीफे-आखिर' का सन् निम्नलिखित ढंग से निकालेंगे -

'त' = ४००, 'स' = ६०, 'न' = ५०, 'फ' = १००, 'अलिफ' = १, 'ख' = ६००, तथा 'र' = २००। नम्बरों का कुल योग १२४१ हिजूरी हुआ।

●

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

साहित्य सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	मूल्य
कबीर	डॉ० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	४०.००
भुवनेश्वरः व्यक्तित्व एवं कृतित्व	सम्पा० राजकुमार शर्मा	६०.००
सुब्रह्मण्य भारती	सम्पा० डॉ० एन० सुन्दरम	१६५.००
साहित्य मनीषी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	डॉ० रामचन्द्र तिवारी	६०.००
भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन चरित्र	राधा कृष्ण दास	४८.००
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन	सम्पा स्व० श्री कमलापति मिश्र	१२५.००
हरिश्चन्द्र	बाबू शिवनन्दन सहाय	१००.००
बंशीधर शुक्ल रचनावली	सम्पा० डॉ० श्यामसुन्दर मधुप	३७८.००
आचार्य किशोरीदास वाजपेई	सम्पा० डॉ० मंजु लता तिवारी	२००.००
गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'	सम्पा० डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक'	१६५.००
गोस्वामी तुलसीदास	डॉ० रामचन्द्र तिवारी	५०.००
लक्ष्मीकांत वर्मा	डॉ. राजकुमार शर्मा	१४०.००
राष्ट्रकवि सोहन लाल द्विवेदी	डॉ० राष्ट्रबन्धु	४०.००
चंदवरदाई	डॉ० सुमन राजे	५०.००
कविवर सुमित्रानन्दन पंत	डॉ० सुरेश चन्द्र गुप्त	५२.००
कथाकार यशपाल	डॉ० मनमोहन सहगल	७०.००
सुभद्रा कुमारी चौहान	डॉ० प्रतीक मिश्र	५५.००
भगवती चरण वर्मा : एक व्यक्तित्व-चित्र	ज्ञान चन्द्र जैन	७०.००
अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	डॉ० कन्हैया सिंह	४३.००
मैथिलीशरण गुप्त	डॉ० प्रभाकर शुक्ल	५०.००
आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी	डॉ० रामेन्द्र पाण्डेय	५०.००
सेनापति	डॉ० अनन्त राम मिश्र 'अनन्त'	७५.००
गुरु नानक देव	डॉ० मनमोहन सहगल	६०.००

सम्पर्क सूत्र

निदेशक

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन

६, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ - २२६००१

दूरभाष : ०५२२-२६१४४७०, २६१४४७१

ISBN : 978-93-82175-37-7

मूल्य ₹ १००=००